यह सुनकर साब झल्ला गये थे ''दुनिया में कोई भी तुम्हारो बात नहीं मानता। तुम लिखकर दो कि तुम उससे काम नहीं करा सकते....।''

वह कुछ क्षण अपमान और क्रोध से झुलसता-सा खड़ा रहा। उसकी इच्छा हुई कि कह दे—आप ही ने इसको मुंह लगा रखा है जिसके कारण वह हम लोगों की परवाह नहीं करता, लेकिन वह कह नहीं सका। फिर भी इस अपमान को वह सह न सका, बोला ''यह काम मुझसे नहीं हो सकता, साब, मैं नहीं करूंगा...।'' वह भीतर ही भीतर टूट-सा गया था। शायद इस बांध में काम करना उसके भाग्य में नहीं हैं।

उसके पश्चात साहब ने जो कुछ कहा था, उससे स्पष्ट था कि उसे यहां नहीं रहने दिया जायेगा। उसका निजी रपट भी बिगाड़ा जा सकता है आदि। तब से उसके भीतर स्नेह और इज्जत की जगह आतंक और भय पैठता चला गया था और उल्लास की जगह मजबूरो ने घेर लिया था—पता नहीं कब उसे इस जगह से दूर फेंक दिया जाये। वह अपनी इस विवशता पर छटपटा उठा था।

''पाइप लाइन दो घंट से पहले ठीक नहीं हो सकता, साब!'' वह टाइमकीपर लौटकर आ चुका था ''बेल्डिंग करना पड़ेगा, फिर अभी बेल्डर भी नहीं है।''

''ठीक है, तुम यहीं रहना। मं नीचे बैठकर मस्टररोल बना लेता हूं, नहीं तो कल लेबर लोगों का पेमेंट नहीं हो पायेगा।'' वह उसी भट्ठी की तरह तपा हुआ टोन के शेड में आकर फिर बैठ गया, उसी काम को करने के लिए जिसके लिए उसे डांट सुननी पड़ी थी।

---

17. दस्तूरो

रामू कुनमुनाते हुए बिस्तर से उठा। सुबह-सुबह ही लोगों का मिलना-जुलना उसे अच्छा नहीं लगता। विशेषकर जब वह रात में देर से सोया हो। वह लड़के पर झुंझलाया था ''सो रहे हैं क्यों न कह दिया र?''

रामू आंख मलते हुए बैठक में गया तो गजाधर सेठ को बैठा देखकर थोड़ा अचकचाया था। वह कुर्सी खींचकर बैठते हुए बोला ''आज आपने कैसे कष्ट किया?'' गजाधर सेठ ने जेब से सौ-सौ के दस नोट निकालकर उसके हाथ में रख दिये ''यह आपका हिस्सा है।'' वह कुछ भयभीत-सा हो गया। शरोर में सिहरन-सी दौड़ गई। हाथ कांपे और क्षणभर को आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया। यह तो घूस है...मन में विचार आते ही उसने रुपये मेज पर रख दिये, बोला ''यह मैं नहीं लूंगा, आप इसे रख लो।'' उन्होंने थोड़ा हैरत से देखा फिर हंसने लगे ''वाह साब, लेंगे कैसे नहीं, हम किसी का हिस्सा नहीं रखते...।'' रुपये वहीं छोड़कर सेठ जी जाने लगे। रामू को फिर घबराहट-सी होने लगी, फिर भी उसने दृढ़ता से कहा ''नहीं, नहीं....आप इसे ले जाइये, मैं हरगिज नहीं लूंगा।'' सेठ जी मुस्करा दिये ''अच्छा...।'' लौटकर रुपये जेब में रखते हुए बोले ''आप कहीं जायेंगे तो नहीं....?'' उसने 'न' कहकर सिर हिला दिया। ''फिर मैं आता हूं...।'' सेठ जी रहस्यमय ढंग से हंसते हुए बाहर चले गये।

रामू असमंजस में पड़ गया। मन में तरह-तरह के प्रश्न उभरने लगे। जब उसने मना कर दिया तो वह फिर आने को क्यों कह गया। वह विचित्र कसमकस में उलझने लगा। वह रुपये क्यों देना चाहता है, जबकि उसने साफ-साफ कह दिया है कि उसे रुपये नहीं चाहिए। कहीं इसके पीछे कोई राज तो नहीं है! ये रुपये उसे घोर विपत्ति में तो नहीं ले जायेंगे। बात साधारण है, चाहे तो रुपये ले ले अथवा न ले, परन्तु यह उसे अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा है। बात केवल निर्णय लेने तक ही सीमित नहीं है, उस निर्णय के पीछे छिपा परिणाम उसे भयभीत कर रहा है। वह सुनता आया है—सेठ गजाधर ऐसा-वैसा ठेकेदार नहीं है। उसकी पहुंच बड़ी ऊंची है। जिससे खफा होता है उसे तबाह करके ही दम लेता है। इन्हें नाराज करना तो मानो पानी में रहकर मगर से बैर करना है। दफ्तर वाले चुटकी बजाते इनका काम निबटाते हैं। बड़े साहब इनसे हंस-हंसकर बातें करते हैं।

फिर वह क्या कर रुपये ले ले...! उसका अन्तरमन गवाही नहीं देता। वह भावी अनिष्ट की आशंका से भीतर तक कांप जाता है। रामू इस नौकरो के पीछे अपनी नौकरो नहीं खोना चाहता। आशंका और भय ने उसे जड़-सा बना दिया है। वह सेठ गजाधर से संबद्ध अपने कार्य और व्यवहार का चिंतन करने लगा। रामू प्राय: कार्य के प्रति हमेशा सख्त रहा है। उसने और इंजीनियरों की भांति ठेकेदारों को कभी ढील नहीं दी। परिणाम में बात-बात पर चख-चख होता और उसकी शिकायत बड़े साहब तक होती। रामू सोचता वह सही है फिर वह डर क्यों? लेकिन यह शायद उसकी नासमझी थी। रुपये की

जरूरत उसे नहीं ह तो क्या दूसरों को भी नहीं है? इतने बड़े कार्य में अकेले उसके वफादार होने से क्या होता है। बुद्धू समझता क्यों नहीं, जिस काम से वह इतनी बेरुखो से मुंह फेर रहा है उसके लिए लोगों में होड़-सी लग जाती है। क्या वह इतना भी नहीं जानता कि लो० नि० विभाग में वह इंजीनियर हेय समझा जाता है जिसे काम नहीं मिलता। और लोग काम लेने के लिए अफसरों की खुशामदखोरो, अपने साथियों की बुराई, निंदा से लेकर क्या-क्या नहीं करते! दफ्तर में बाबू कम से कम काम करना चाहते हैं; परन्तु फील्ड में इंजीनियर अधिक से अधिक काम पाने के लिए छीना-झपटो करते हैं। फिर वह क्यों नहीं अपने को बदल लेता। विरोध का परिणाम जानता है फिर भी विराध कर रहा है।

ऐसे ही किस्म के एक इंजीनियर के लिए एक अधिकारो को कहते सुना गया था। कुत्ता जब रोटो का टकड़ा पाकर भी गुर्राता है तो उसकी टांग तोड़ दी जाती है। और उसने टकड़ा लेने से ही इनकार कर दिया है, पता नहीं इसका परिणाम क्या होगा?

''साब चाय बनाऊं'' लड़के ने पानी का मग मेज पर रखते हुए पूछा, तो उसको झटका-सा लगा और उसकी विचारधारा टट गयी। ''एक कप ज्यादा बनाना''...वह पानी लेकर बाहर कुल्ला करने लगा। अभी थोड़ी देर हाथ-मुंह पोंछकर बैठा ही था कि सेठ जी फिर आ गये। रामू फिर दुविधा में डूबने लगा। सेठ जी आते ही उसके हाथ मं वही रुपये रखते हुए बोले ''अर....अभी तक आप उलझन में हैं, इसे रखिये और चाय पिलाइये...।'' ''नहीं, नहीं...'' कहते हुए राम रुपये मेज पर रख दिया। लड़के को आवाज लगाई और चाय लाने को कह दिया। रामू को फिर घबड़ाहट-सी होने लगी। उसने अपनी घबराहट छिपाने के लिए पूछा ''अभी आप कहां से आ रहे हैं?''

''इसी काम से गया था साब, कल चेक मिला था न, साब लोगों को उनका हिस्सा देकर आ रहा हूं। वे तो लपककर ले लेते हैं और आप हैं कि ''नहीं, नहीं किये जा रहे हैं...।'' वह मुस्कुराने लगा।

रामू कुछ न बोला, उसके चेहर पर परशानी के चिह्न उभरने लगे। भीतर जैसे कोई द्वन्द्व मचा हो। डर था कहीं उसके बार-बार इन्कार करने की वजह को वह कुछ और न समझ ले और उसे व्यर्थ ही परशानी उठाना पड़े। रामू अपने को संयत करते हुए बोला, ''मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। मैं आपसे कभी शिकायत नहीं करूंगा कि आपने मुझे कुछ नहीं दिया। मैं अपना कर्तव्य पूरा कर रहा हूं इसी से खुश हूं।''

सेठ फिर हंसने लगा, बोला ''साब, आप बुरा न मानें तो कहूं, इस क्षेत्र में मुझे आपसे ज्यादा तजुर्बा है। नये आन वाले साहब हमेशा यही कहते हैं, भय और झिझक के कारण। नये लोग जिस काम से कतराते हैं, पुराना व्यक्ति उसी काम को हथियाने के ताक में लगा रहता है। और यदि

सयोग से भी अफसर के दूर दराज का कोई रिश्तेदार या जान-पहचान का कोई व्यक्ति मिल गया तो वह उसे ही सबसे अधिक काम देगा। यदि काम के पीछे कुछ न मिले तो भला कोई इतना तिकड़म क्यों कर...?

''मैं आपके झिझक की वजह जानता हूं, पर विश्वास रखें ऐसी कोई बात नहीं होगी। फील्ड में काम के लिए मतभेद भले ही हो; परन्तु लेन-देन में कभी सौतेला व्यवहार नहीं होगा। यह एक दस्तूर है और इस दस्तूर के मामले में हर ठेकेदार को ईमानदार होना ही पड़ता है। चाहे इसे विवशता कहिये या धन्धे के प्रति ईमानदारो।''

''लेकिन सेठ जी मैं ऐसा नहीं हूं।'' ''हो सकता है साब, पर आप मेरो बात तो सुनिये, जब आप कहते हैं तो आपके हित में भले ही न हो, लेकिन हमार हित में तो है। हमार लिए ही सही आपको लेना पड़ेगा...।'' ''सेठ जी मुझे कुछ समझ नहीं आया...'' रामू बगलें झांकने लगा। वह किसी भी तरह इससे पीछा छुड़ाना चाहता था। परन्तु सेठ जी भी ठानकर ही बैठे थे कि....

वे फिर मुस्कराते हुए बताने लगे, ''जब आपसे कोई पूछेगा कि अमुक ने कुछ दिया कि नहीं तो आप हां तो कहेंगे नहीं, और जब यह बात अफसर लोगों तक पहुंचेगी कि गजाधर ठेकेदार दस्तूरो देने में हीला हवाला करता है तो साब हमें काम नहीं मिलेगा, समय पर बिल नहीं मिलेगा और समय पर बिल न मिलना ठेकेदार की मौत है। हर आदमी चार पैसे कमाना चाहता है साब। अगर मैं यह कह दूं कि आप लेना ही नहीं चाहते तो लोग यकीन नहीं करंगे। और यदि बात अफसरों के कान तक पहुंची तो आपको परशान किया जायेगा, उस वक्त आपसे कोई हमदर्दी जताने वाला नहीं मिलेगा। जहां तक मैं जानता हूं इस विभाग में हर कोई लेता है। अलिखित संविधान की तरह यह दस्तूर न जाने कब से चला आ रहा है। इसके लिए न कोई मीसा है न कोई सूत्रोय कार्यक्रम।''

यह सुनकर रामू अपनी हंसी न रोक सका, लड़का चाय लाकर रख दिया था। दोनों खामोशी से चाय की चुस्की लेने लगे। रामू सोच रहा था—अगर यह सच है तो क्या उसे रुपये ले लेना चाहिए—फिर उसके भीतर संघर्ष छिड़ गया। चाय खत्म करके कप को प्लेट पर रखते हुए उसने पूछा, ''तो क्या ये पंडित लोग भी लेते हैं।'' जवाब में सेठजी जोर से हंसने लगे, ''अर, साब, आप भी क्या कहते हैं। पैसा किसे प्यारा नहीं है। फिर धर्म अपनी जगह है इसे आप बीच में क्यों घसीट रहे हैं। एक दूबे जी हैं कट्टर आर्य समाजी। प्राय: हर इतवार को कहीं

न कहीं हवन, प्रवचन का कार्यक्रम आयोजित कराते हैं। दूसर पाठक जी हैं, वे श्रद्धालुओं के घर तीज-त्योहार में कथा बांचते हैं और तीसर पंडितजी रोज शाम-सबेर दो घण्ट पूजा करते हैं पर साब, लेन-देन में ऐसे खर हैं कि दूसर क्या होंगे। फिर यह तो दस्तूरो है, घूस या रिश्वत तो नहीं। यह तो एक निश्चित दर पर बंधी-बंधाई रकम है। इसे अधर्म की कमाई नहीं कहते। मेरो जगह कोई भी होता तो देता और आपकी जगह कोई भी होता तो लेता, फिर इसमें आनाकानी करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।''

रामू अपनी हंसी दबाते हुए बोला, ''अच्छा, अभी इसे अपने पास रखें, मैं जरूरत पड़ने पर ले लूंगा।'' लेकिन सेठ जी ऐसे मानने वाले नहीं थे, बोले ''यह ठीक है, लेकिन एक शर्त पर, अगर कोई पूछे तो कहना होगा कि आपको अपना हिस्सा मिल चुका है।'' वह हंसने लगा बोला, ''यही कहूंगा।''

---

18. आसरा

हरोश आज वापस आ रहा है यह सुनकर ही काका विचलित-से हो गये हैं। मन किसी तरह स्थिर नहीं होता, मन में अनेक आवेग उठते और मिटते जा रहे हैं। बार-बार निश्चय करते हैं—जो भी हो आज सारो बातें साफ-साफ करके रहेंगे! चाहे उन्हें कुछ कठोर ही क्यों न होना पड़े। बहुत सहा है, आगे भी सह लेंगे। वह वृद्ध माता-पिता के प्रति अपना कर्तव्य नहीं समझता, आज उसे यह अनुभव करा देंगे...आगे जो जी में आये कर।

काका अपनी पुरानी खटिया पर जिसकी रस्सी अब तार-तार हो गयी है, निश्चल बैठे हैं। यह उनका पुस्तैनी मकान है। है तो कच्चा ही परन्तु वे कहते हैं ऐसा मकान गांव में किसी का नहीं। कई बार जी में आया था कि इसे तुड़वाकर पक्का कर लें। पर सोचते जब तक चलता है चलने दें, व्यर्थ पैसा गंवाने से क्या फायदा या एक न एक दिन इसे भी छोड़ना ही पड़गा, फिर कच्चा हो या पक्का क्या अंतर पड़ता है! बहरहाल वह मकान आज तक उसी हालत में है। आखिरो का कमरा उनका है वहां उनकी खाट हर समय बिछी रहती है। उसके सामने हरोश के बचपन की तसवीर है तथा ठीक उसके सीध वाली दीवार पर थोड़ा नीचे चौकोर छेद है जो इस कमर में खिड़की का काम देता है।

इस खिड़की से दिन में तसवीर के आस-पास मद्धिम प्रकाश फैला रहता है। उस कमर में प्रवेश करने वाले को सबसे पहले कोई वस्तु स्पष्ट दिखाई देती है तो वह है हरोश की तसवीर। काका एक विचित्र मानसिक द्वन्द्व में घिर हुए हैं। कुछ क्षण तक वे टकटकी लगाये उस तसवीर को देखते रहे। धीर-धीर वह तसवीर धुंधली होती गयी और उसकी जगह हंसता हुआ नन्हा हरोश उतर आया। उसके पैरों में बंधी घुंघरू बजने लगी और वह काका की गोदी में मचलकर बैठ गया.....। वह किसी पर्व का दिन था। सामने थाल में मिठाइयां रखी थीं। हरोश को कभी काका खिलाता तो कभी काकी, कभी वह स्वयं उठा लेता। पति-पत्नो बालक की बालक्रीड़ा देख प्रसन्न हो रहे थे। काका उसे यों इठलाकर मजे से खाते देख बोला—''क्या वृद्ध हो जाने पर यह भी हमें इसी भाति प्रेमपूर्वक खिलायेगा?'' काकी बोली, ''नहीं, बच्चे बड़े होकर भूल जाते हैं...।'' काका को कुछ धक्का-सा लगा फिर भी इस संभावना के विपरोत अपने को आश्वस्त-सा करते हुए बोले, ''हमारा हरोश ऐसा नहीं होगा।'' ''कौन जानता है....?'' काकी हंसने लगी। काका को फिर धक्का लगा मगर अपने भीतर के अवसाद को छिपाकर बोले, ''क्या तू बड़ा होकर हमें भूल जायेगा?'' हरोश ने हंसते हुए सिर हिला दिया ''...हां...।''

काकी फिर हंसने लगी। उसे ऐसी अपेक्षा नहीं थी। काका भीतर से दुखी हो गये। हरोश मचलकर गोदी से उतरा और खिड़की की छड़ पकड़कर बाहर झांकने लगा। देखते-ही-देखते उसका एक हाथ छूट गया और दूसरा भी....काका लपक कर उठे, लेकिन वहां हरोश नहीं था। बाहर गली में बच्चे इधर-उधर दौड़ रहे थे। गली-आंगन में धूप फैली हुई थी। हवा में नमी थी। जिससे वातावरण में अब भी ठंडकता शेष थी।

उन्होंने एक के बाद एक लगातार न जाने कितने पत्र लिखे थे पर किसी का जवाब नहीं आया। पता नहीं हरोश ने ऐसा क्यों किया। क्यों उसने नाता तोड़ दिया? जब तक सामर्थ्य चला वे कभी भूखे नहीं सोये, परन्तु अब इस बुढ़ापे में उन्हें फांका करना पड़ा तो अपनी इस लाचारो पर वे तिलमिला उठे। बार-बार अपनी असमर्थता पर खीझे थे। बार-बार अपने दुर्भाग्य और पुत्र हरोश को कोसा था। आज वही नालायक बेटा वर्षों बाद घर आ रहा था, तब भला उसे खुशी कैसे होती? काका मुड़कर पुन: तसवीर की ओर देखने लगे, पुन: तसवीर धुंधलाने लगी और वे फिर विगत की स्मृति में खो गये। उस दिन काका जैसे टट ही गये थे। लोगों ने आकर बताया कि हरोश को पुलिस ले गयी है तो उन्हें विश्वास ही न आता था कि उनका लड़का चोर हो सकता है। बार-बार ढाढ़स बंधाते—हरोश की जगह कोई और होगा या उस पर झूठा आरोप होगा लेकिन सत्य को कितनी देर नकारते। हरोश अपने मित्र के साथ चोरो करते रगे हाथ पकड़ा गया था।

हृदय ग्लानि और क्षोभ से भर गया था। पुलिस चौकी से सिर नीचा किये चुपचाप लौट आये। हृदय को भारो आघात पहुंचा था। लगता

था सारो इज्जत-आबरू मिट गयी। जिसे जीवन का सहारा समझे थे उसी ने बेसहारा कर दिया। हृदय पर पत्थर रखकर यह चोट भी उन्होंने झेल लिया। किसी तरह जमानत पर उसे घर वापस ले आये। युवा खून, हरोश को कुछ न कह सके...खुद अंदर से घुटते रहे....।

'यह आपको क्या हो गया है...वर्षों बाद हरोश घर आ रहा है और आप एकदम खामोश बैठे हैं। इस हालत में वह देखेगा तो क्या समझेगा... ?' काकी इधर-उधर झाड़ू चलाते हुए बोली। वर्षों बाद इस मकान को आज फिर से वह सजा-संवार रही थी।....''अब समझने को शष क्या है, उसने पहले भी कब समझा ?...'' काका के अंतर में कुछ उमड़ रहा था जो अब बाहर आने लगा ''हमने उसके लिए सारो जिन्दगी खो दी। क्या तू नहीं जानती, हमने जीवन भर की जमा पूंजी उसके लिए खर्च कर दी। उसकी हर चाह के पीछे घुटने टके। उसकी हर इच्छा पूरो करते रहे परन्तु उसने कब परवाह किया ? कभी पूछा तक नहीं कि हम भूखे तो नहीं हैं....।''

''आप ही ने तो उसे इतना सिर चढ़ाया था, नहीं तो वह इतना क्यों बिगड़ता....अब पछताते हो....।'' काकी तुनक गई थी। ''हां, मैंने ही उसे बिगाड़ा है...।'' काका निर्विकार भाव से बोलने लगे–''उसे बुढ़ापा का सबल समझ उंगलियों पर उठाते फिरा उसी का परिणाम भोगता हूं। उसके सार अवगुणों को बालक समझकर उपेक्षित क्यों करता रहा अब जिन्दगी भर इसी का पछतावा रहेगा...।'' हरोश इतना खुदगर्ज हो जायेगा यह तो वे सोच भी न सकते थे। जिस पुत्र के लिए उन्होंने सब कुछ खो दिया वह अनजान की तरह मुंह फेर लेगा, कौन कह सकता है ?

उन्होंने बहुत चेष्टा की थी, हरोश को समझाने की परन्तु सब व्यर्थ। बहुत भाग-दौड़ के पश्चात उसे किसी तरह नौकरो पर लगाये थे–यह सोचकर तो नहीं कि–वह मौज-मस्ती करगा और वृद्ध मां-बाप की ओर से आंख मींच लेगा। शादी की तो अपनी मर्जी से–यह भी ठीक था–पर क्या पूछ लेता तो हम बाधा बन जाते...। जब भी आया अजनबी की तरह, न किसी की खोज-खबर न किसी का कुशल क्षेम। अपनी ही दुनिया में मस्त। लगता नहीं कि घर में बेटा आया है। क्या उन्हें हरोश से कुछ भी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए ?

''वह अपना कर्तव्य भूल गया तो क्या हम भी उसे ठुकरा दें....आखिर वह हमारो ही संतान है...।'' काकी कुछ चिंतित हो गई थी। काका उसकी बात अनसुनी करते हुए बोले, ''अब मुझसे और नहीं सहा जाता, बहुत सह लिया...। उसके जो जी में आये कर.....जहां चाहे जाये या रहे...। आज मैं साफ-साफ कह दूंगा–यह घर उसके लिए नहीं है। इस पर उसका कोई हक नहीं। मुझे उससे कोई सरोकार नहीं। अब इस जिन्दगी का क्या है; कट ही जायेगी, लेकिन मैं उसके सामने हाथ नहीं फैलाऊंगा। इतना सहा है तो आगे भी सह लेंगे।''

तभी हरोश अपने बच्चों के साथ आता दिखाई दिया। वे दोनों खामोश देखते रहे। काकी डरती थी–वे कुछ अनुचित न कह दें। आशा के विपरोत स्याह चेहरा। अंदर की ओर धंसती आंखें। बढ़ी हुई बेतरतीब दाढ़ी। चिकना भद्दा चेहरा। सब मिलाकर असमय ही बुढ़ापे का अहसास। जीवन की लड़ाई में थका-हारा युवक जो समय से पहले ही बूढ़ा हो गया था–हरोश नहीं लग रहा था। ''यह कौन है ?''....उसने धीर

से पूछा। ''हरोश ही तो...।'' काकी बोली ''क्या ?''...अंतर से एक आह निकल गई। उसकी जर्जर हालत देख काका उसे क्या कुछ कहने वाले थे, सब भूल गये। हरोश को तो स्वयं सहारा चाहिए, उससे भला वे क्या आसरा करते। उन्होंने पुनः तस्वीर की ओर मुड़कर देखा; इन दोनों हरोश में कितनी भिन्नता थी। उनकी आंखें भर आईं और तसवीर फिर धुंधला गई।

---

19. कमजोर आदमी

इधर कुछ दिनों से रामू निरतर मानसिक द्वन्द्व में उलझा हुआ है। बदले की भावना सिर पर भूत की तरह सवार हो गई है। जिस स्थिति से आज तक वह सहज ही जूझता आया है वही अब उसके लिए कठिन चुनौती साबित होने लगी है। लगता है वह इस झंझावात के सामने खड़ा नहीं रह पायेगा। अब उसे वर्मा के नाम से ही चिढ़ हो गई है।

जब उसकी तंद्रा टटो तो चारों ओर कमर में प्रकाश फैल गया था। कब दफ्तर से लोग उठ-उठकर चले गये थे, उसे पता ही न चला। उसे फाइलों में व्यस्त देख चौकीदार बत्ती जलाकर चला गया था। फाइल समेटते वक्त उसके होठ कुटिलता से मुस्करा रहे थे। वह धीर-धीर बुदबुदा रहा था, ''अब देखता हूं वर्मा का घमंड...।'' शाम का धुंधलका कालोनी में उतर आया था। आज उसे घर लौटने में फिर देरो हो गई थी। आजकल प्रायः वह देर से ही घर लौटता है। दरवाजा पर दस्तक देने के पश्चात कुछ क्षण टोह लेता-सा प्रतीक्षा करता है कि बच्चे कहीं जाग तो नहीं रहे हैं, कोई आवाज नहीं आती तो इत्मीनान से दरवाजा खटखटाता है। मन को एक सकून-सा मिलता है। वह मन ही मन सोचता है–चलो अच्छा हुआ। आज फिर झूठा वादा तो नहों करना पड़ेगा। परन्तु सुबह ''उफ'' मन एक अव्यक्त विवशता से छटपटा उठता है, क्यों वह अपने ही बच्चों से मुंह छिपाना चाहता है। मुंह का स्वाद कैसा तो हो जाता है!

पत्नो दरवाजा खोलती है तो उसकी आंखों में सूनापन झांकने लगता है। वह पत्नो की आंखों में अपनी असमर्थता स्पष्ट देख पाता है। लगता है वे आंखें उसे घृणा और नफरत से घूर रही हैं। वह नीची दृष्टि किये चुपचाप भीतर चला जाता है। कमर में न जाने कैसी उदासी भर गयी है। अंतर में कहीं दर्द-सा उठता है और सार शरीर में व्यापने लगता है। पत्नो की उपेक्षा से वह तिलमिला उठा—'बच्चे, सो गये क्या.... ?' वह अपनी बेचैनी छिपा लेना चाहता है। परन्तु वह कुछ नहीं कहती। जवाब न पाकर उसका दिल भीतर ही भीतर बैठने लगता है। मुंह का कसैला स्वाद और भी फीका हो जाता है। वह हाथ-मुंह धोकर रसोई में आ गया। उसकी पत्नो बोर का टुकड़ा दीवार के किनार सरकाकर भोजन परोसने में व्यस्त हो गयी। कभी-कभी न जाने क्यों वह अपने आप को अपराधी-सा महसूस करने लगता है। चाहकर भी वह अपने को इस मनःस्थिति से उबार नहीं पा रहा है। क्या वह पत्नो को बता दे कि स्टोर का चार्ज देते समय वर्मा ने सौ क्विंटल लोहे की जगह दस क्विंटल लिख डाला है। अब वह नब्बे क्विंटल लोहा बाजार में बेच दे तो वसूली वर्मा भुगतेगा...। परन्तु रामू उसे जब्त कर जाता है। वह खामोशी से कौर तोड़ने लगता है।

कमर की उदासी असह्य होती जा रही है। ''तुम कुछ बोल नहीं रही हो...।'' वह समझ ही नहीं पाता आजकल उनके मध्य इतना तनाव क्यों पैदा हो जाता है। अब भी वह कुछ नहीं कहती। एक अर्थपूर्ण गहरी दृष्टि से घूरकर मुंह फेर लेती है। मन और भी आकुल हो जाता है, आखिर जो कहना है वह कहती क्यों नहीं? कटोरी में सब्जी खत्म हो गई थी। वह जोर-जोर से कड़ाही में चम्मच चलाकर थाड़ी-सी सब्जी निकालती है। वह सब्जी के बजाय कटोरी में जैसे अपना मन का आक्रोश उड़ेल देती है, कटोरी झनझनाकर चुप हो गई।

''आज भी छोट के लिए साइकिल नहीं लाये....।'' बेहद उपेक्षित आवाज।

''पैसे कहां थे...।''

''कर्ज पर ले आते....।''

''मुझसे यह नहीं होगा।''....उसकी आवाज में कुछ कड़वाहट थी। ''आपसे भला क्यों होगा! दिन भर बच्चों को सम्हालना तो मुझे है, आपको क्या.... ?'' जैसे वह इसी अवसर की ताक में भरी बैठी थी, एकदम से फूट पड़ी—''आज दिन भर वह सायकिल के लिए रोता रहा है। बहुत मनाने पर भी वह अपनी जिद पर अड़ा रहा....हमें भी सायकिल चाहिए..... चुन्नू की सायकिल पर जबरदस्ती बैठ जाता है। आज तो इसने हद ही कर दी। चुन्नू को नीचे ढकेल खुद बैठ गया। वर्मा जी देखे तो लाल-पीले होते हुए आये सायकिल छीनकर बोले 'तेर बाप की है क्या जो छीन लेता है....।' तब से वह रोते-रोते सो गया, न कुछ खाया न पिया। मुझसे यह सब देखा नहीं जाता....।'' कहते-कहते वह सुबकने लगी।

वह असमंजस में पड़ जाता है। एक गहरी निःश्वास लेकर छोड़ देता है। लालटन की पीली रोशनी आंखों में चुभने लगी है। मन-ही-मन अपने आपको कोसता है धत्तेर की—यह भी क्या जिन्दगी है, दिन भर खटता हूं तो—पत्नो की विवेकहीनता पर तरस आती है—शान्तिपूर्वक रोटी तो खा लेने देती...। मुंह का ग्रास नीचे उतारने के लिए पानी पीना पड़ता है।

उसे विदित है कि बच्चों की जिद की ओट में वह और क्या कहेगी—वर्मा जी के यहां कल सोफासेट आ गया, टबिलफैन तो वे पहले ही ला चुके हैं। मिसेज वर्मा कह रही थी, उसके लाख मना करने पर भी वर्मा जी उसे घड़ी खरीद ही दिये। अपने यहां बैठने को एक तिपाई तक नहीं, लोग आते हैं तो जमीन पर बिठाते संकोच होता है। बाल-बच्चेदार घर में स्टोव होना ही चाहिए। जो कल नौकरी पर आये उनके घरों में सामानों का अंबार है। अब वर्मा जी को ही देखो न....। उसे मन की उलझन छिपाने के लिए मुंह जल्दी-जल्दी चलाना पड़ता है। वह नपे-तुले संयत स्वर में बोला, ''महीने का आखिरी दिन है, तुम भली-भांति जानती हो। फिर चाहते हुए भी हम बच्चों की हर जिद तो पूरी नहीं कर सकते....।'' स्पष्ट ही वह पत्नो को आश्वासन देकर टालना चाहता है। ठोस वादा का मतलब है अगले माह एक खतरा मोल लेना।

वह शीघ्रता में हाथ-मुंह धोकर उठ जाता है जैसे पत्नो से दूर भाग रहा हो। खाट का ढीलापन बड़ा आरामदायी लगता है। उसकी खाट पर बड़ा लड़का और छोटा दूसरी पर निश्चिंत लेटा हुआ है। वह मन हो मन सोचता है बचपन कितना निश्चिंत होता है। सोचते-सोचते वह खुद चिंता में डूब जाता है। प्रातः बच्चे फिर साइकिल की मांग करेंगे। अनेक बार यह मांग कल पर टालता रहा है; परन्तु चाहकर भी वह सायकिल न ला सका। वह करवट बदलकर सोने का उपक्रम करने लगता है; परन्तु आंखों से जैसे नींद उड़ गई है।

वह अपने आज के आर्थिक-संकट की चिंता में खोया अतीत में पहुंच गया—तब उसका जीवन स्थिर पानी की तरह एकदम शांत था जहां कोई उतार-चढ़ाव नहीं था। बस चारों ओर आडंबर-हीन सीधी सरल जिंदगी बीत रही थी। शीला की संतोषी वृत्ति हमेशा उसे आत्मतुष्टि देती थी। परन्तु जब से उसे नौकरी मिली और वे इस शहरी कालोनी में आकर रहने लगे, शीला जैसे एकदम बदल गई। पड़ोसियों का रहन-सहन देख उसकी आंखें चौंधियां गईं। उसके भीतर किसी भिन्न अस्तित्व ने जन्म ले लिया जिसे सुन्दर कपड़े, बहुमूल्य सामान और चमचमाता घर चाहिए था। शांत और संतोषी शीला की जगह उस शोख महत्त्वाकांक्षी व्यक्तित्व के उभरने के साथ ही उसकी जिंदगी में हलचल पैदा हो गई। साज-सज्जा और दिखावे की वस्तुओं के क्रय में वृद्धि हो गई। निरंतर सीमित आय पर असीमित मांग—सुरसा के मुंह की तरह। फिर आर्थिक ढांचा का चरमराकर टूटना और आज की स्थिति। वह एक लंबे समय से इस अवस्था को झेलता रहा है; परन्तु अब वह जैसे टूटने लगा है।

वह चाहता तो अपनी आय का साधन भी बढ़ा सकता था, वर्मा की तरह...ठेकेदारों या सप्लायरों को घुमाकर। परन्तु उसके भीतर कोई

था जो हमेशा उसे ऐसा करने से रोका था। उसने सदैव अनेक शारीरिक और मानसिक यंत्रणा सहकर भी नैतिकता का दामन नहीं छोड़ा था। परन्तु आज उसे वर्मा की वह बात लग गई थी....''तेर बाप का है क्या, जो छीन लेता है...।'' वर्मा उसके बराबरी का आदमी है बच्चों को लेकर उसे ऐसे नहीं कहना चाहिए। सहयोगी उसे कंजूस, हरिश्चन्द्र कहकर चिढ़ाते हैं। पत्नो पड़ोसियों की नाजायज कमाई देखकर कुढ़ती है। उसे लगता है वह अकेला, एकदम अकला चारों तरफ से अंधकार में घिर गया है। खाट की चरमराने की आवाज से वह समझ गया कि पत्नो बरतन-चौका निपटाकर आ गई है।

वह पत्नो की तरफ से मुंह फेर लेता है। मन-ही-मन सोचता है पत्नो चुप ही रहती तो अच्छा था। रह-रहकर उसे वर्मा की बात याद आ रही थी। अब इस बार वह वर्मा को नहीं छोड़ेगा—साला हराम का पैसा पाकर इतराने लगा था। वर्मा ने उसे बहुत सताया है। उसी की बदौलत उसकी गृहस्थी नरक हो गई है। वह सारा लोहा बेचकर अपनी दरिद्री मिटायेगा। आगे चाहे जो हो...। उसे मेहनत और ईमानदारी को जिंदगी में क्या मिला है—उपेक्षा, नफरत और लोगों की तरह-तरह के ताने।

दूसर दिन जब वह टक से लोहा उतरा रहा था तब भी उसके मन में नब्बे क्विंटल लोहा छाया हुआ था। चालान पर हस्ताक्षर लेते समय ड्राइवर (टक चालक) बोला, ''बाबू जी यदि आप कुछ माल एडजेस्ट कर सकें तो हम इसे बेचने की व्यवस्था कर सकते हैं...। उसे इस अप्रत्याशित अवसर की आशा न थी। वह क्षण भर के लिए अचंभित-सा रह गया। वह बदले की भावना से अब भी जल रहा था। वह सोचने लगा यह ईमानदारी का चोंगा अब फेंक ही देना चाहिए; परन्तु दूसर ही पल उसका सांस्कारिक मन उसे रोक दिया—तुम अनर्थ करने जा रहे हो...। यदि रास्ते में ही पकड़े गये तो...। उसका सारा शरीर झनझना उठा। कुछ क्षण पश्चात उसने अपने को व्यवस्थित करते हुए बोला ''भाई, मैं कमजोर आदमी हूं, मुझे डर लगता है, मैं यह नहीं कर सकता....।'' वह चालान फार्म पर दस्तख्त करके आगे बढ़ गया।

---

20. भगोड़ा

रामदास सदैव साधु-सन्तों के नाम से चिढ़ता था। इसके लिए उसके पास पर्याप्त कारण भी थे। वह कहता—'ये साधु-सन्त घूम-घूमकर पेट भरने के अतिरिक्त और करते क्या हैं?' लेकिन आज वह बहुत उदास होकर घर से निकला था। कई दिनों से रोज घर में किसी-न-किसी बात को लेकर खटपट होती और एक अजीब तनाव और घुटन में घर की सुख-शांति कहीं डूब गई थी...।

उसने घर से जाते समय लड़कों से कहा, ''तुम लोगों ने घर को नरक बना डाला है। यहां पल भर भी चैन नहीं। दिन-रात छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ते रहते हो। सब जोरू के गुलाम बन गये हो। लानत है तुम लोगों को। इस बूढ़े का भी लिहाज नहीं करते। मैं अब इस घर से जा रहा हूं। जब तक तुम लोग शांतिपूर्वक रहना नहीं सीखोगे मैं वापस नहीं आऊंगा। वैसे भी अब मेरा जीवन का क्या है; किसी तरह बीत ही जायेगा, पर तुम लोग इस अंतिम समय में भी मुझे शांतिपूर्वक रहने नहीं देते...।'' कहते-कहते वह द्रवित हो गया। वह घर छोड़कर जाना नहीं चाहता, पर विवश है, घर में चैन नाम की कोई चीज नहीं है।

बड़ा लड़का सयाना तथा शांत स्वभाव का था, उसने कहा ''लेकिन पिताजी, आप जायेंगे कहां?'' रामदास ने कुछ तुनककर कहा ''कहीं भी, संसार बहुत बड़ा है....'' फिर नम्र होकर बोला, ''सुनता हूं, यहां से चार मील पर गांव में साधु समाज विचरण कर रहा है। कहते हैं, उनके पास जाने से बड़ी शांति मिलती है। फिर क्यों न शेष समय उन्हीं की संगत में रहूं।''

बड़ा लड़का कुछ हंसा, बोला, ''लेकिन...पिताजी, आप तो उनके नाम से ही चिढ़ने लगते थे।'' ''तो क्या हुआ, तुम लोगों पर भरोसा करके जो आस लगाये बैठा था उसका परिणाम तो प्रत्यक्ष देख और भोग रहा हू....।'' उसने खीझकर कहा और अपने कपड़ों की गठरी उठाकर चल दिया।

वह चलते-चलते सोचने लगा—सचमुच यह संसार कितना स्वार्थी है। शरीर जरा कमजोर हुआ नहीं कि लोग खांव-खांव करने लगते हैं। बहू-बेटा कोई पूछता ही नहीं, जैसे वही इस घर की सबसे फालत् चीज हैं। एक दिन था, जब उसकी मर्जी के बग़ैर इस घर का एक तिनका भी इधर-से-उधर नहीं होता था और अब...इधर कुछ दिनों से उसे बराबर एहसास होता जा रहा है कि इस घर में उसकी उपस्थिति से लोगों को असुविधा-सी महसूस होने लगी है। यही घर-संसार है जिसे संवारने में उसकी सारी उम्र बीत गई, वही आज नरक जान पड़ता है।

गरमी के कारण सारा बदन पसीने से चिपचिपा रहा था। उसने धोती के एक छोर से मुंह तथा गले का पसीना पोंछा, गठरी की स्थिति बदली और एक लम्बी सांस खींचकर छोड़ते हुए आगे बढ़ा। वह कुछ आश्वस्त-सा महसूस करने लगा जैसे किसी अप्रत्याशित हानि से

सौभाग्यवश बच गया हो। वह प्रसन्न था कि समय रहते जाग गया है अन्यथा उसकी सारी जिन्दगी यों ही बर्बाद हो जाती। वह सोच रहा था—यह भी अजीब संयोग है, जिन्दगी भर जिनके नाम से मैं चिढ़ता था, जीवन की इस अंतिम दौर में उन्हीं के पास सुख की आशा लेकर जा रहा हूं। अब यहां तो आराम-ही-आराम है, न किसी बात की चिन्ता है, न फिकर। न किसी की सुनना, न सुनाना। मस्त खाओ और पड़े रहो। अच्छा ही हुआ, रोज-रोज की किल्लत से तो जान बची।

जब वह पहुंचा तो दोपहर का समय हो गया था। वहां पहुंचते ही उसे लगा जैसे सब बन्धनों से वह छूट गया है। तुरन्त उसने संतप्रवर के पास जाकर अपना उद्देश्य निवेदन किया तो उन्होंने निर्विकार भाव से कहा, ''यदि दृढ़ निश्चय हो तो बहुत बढ़िया है, अन्यथा जल्दबाजी में कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए। यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। जरा-सा चूके कि मनुष्य पतित हो जाता है। खूब अच्छी तरह सोच लो, तब आगे बढ़ो...।'' इस पर रामदास ने कहा, ''अब मैं आपकी ही शरण में रहना चाहता हूं। जिन्दगी भर भटकता रहा, अब स्थिर होना चाहता हूं।''

''अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा....।'' उन्होंने मुस्कराकर कहा, ''अब जाओ भण्डार घर में जाकर भोजन कर लो, भोजन का समय हो गया है।''

वह भण्डार घर में आ गया जहां भोजन इत्यादि की व्यवस्था थी। यहां बल्ली के सहार ऊपर पत्ते, चटाई आदि डालकर मण्डप जैसा बना दिया गया था। पत्ते और चटाई के छिद्रों से खंड-खंड सर्वत्र धूप के टकड़े बिखर हुए थे। नीचे ऊबड़-खाबड़ जमीन को लीप कर बैठने लायक बना दी गई थी। लोग वहीं पत्तल लेकर बैठते जा रहे थे, लेकिन रामदास को बैठकर भोजन पाने लायक उपयुक्त जगह नहीं दिखाई दे रही थी। आखिर किसी तरह वह एक कोने में बैठ गया। पत्तल आया और भोजन भी परस दिया गया, लेकिन उससे कुछ खाया नहीं गया। एकदम फीका, बिना नमक-मिर्च के बेस्वाद भोजन। वह सोचने लगा—इस हालत में वह यहां कितने दिन रह सकेगा। वह तो समझता था यहां स्वादिष्ट व्यंजनों की भरमार होती है; परन्तु उसकी धारणा कितनी निर्मल साबित हुई है। भोजन के पश्चात लोग अपने-अपने पत्तल उठाकर फेंकने लगे। अपना ही जूठा पत्तल उठाते वह आत्मग्लानि से भर उठा। उसे लगा जैसे वह एकदम छोटा हो गया है और लोग उसे ही देख रहे हैं। जिन्दगी भर वह दूसरों से सेवा लेता रहा और आज जब उसे अपना काम स्वयं करना पड़ा तो जैसे हीनता में डूबता चला गया।

भोजन के पश्चात लोगों को जहां जगह दिखी चादर अथवा चटाई बिछाकर आराम करने लगे, मगर हमार रामदास भैया को सोने लायक कहीं जगह नहीं मिली। पर क्या करते! चलते-चलते थक गये थे, किसी तरह एक कोना तलाशकर लेट गये; परन्तु उसे नींद कैसे आती, जमीन पर लेटा था, कोई नरम गद्दा और तनाव रहित निवार का पलंग तो नहीं था। जिस करवट लेटते वही अंग दुखता था। उसकी आंख झपकी भी नहीं और प्रवचन का समय हो गया। लोगों ने उसे उठा दिया और वह भी प्रवचन सुनने चला गया। प्रवचन दो घण्ट चला तथा शाम को कुछ समय विश्राम के पश्चात रात्रि दस बजे तक फिर पाठ-प्रवचन हुए। उसने वहां से उठते हुए एक संत से पूछा, ''क्या रोज इसी तरह इतने समय तक प्रवचन होता है!'' उन्होंने कहा, ''हां, भाई, रोज ही....बल्कि इससे भी अधिक समय तक...।'' रामदास मन-ही-मन बुदबुदाया, ''मारा गया, यहां तो कष्ट ही कष्ट है, इससे तो घर ही अच्छा था।''

प्रात: जब चार बजे उठने की घंटो बजी तो उसे लग रहा था कि वह वहां से हिल भी नहीं सकेगा।

कच्ची नींद के कारण आंखों में कड़ुवाहट थी तथा सिर भारी हो रहा था। शरीर में तो पहले से ही दर्द व्याप्त था। आखिर मन मारकर उठा और बाहर चला गया। दैनिक क्रिया से निवृत्त हो जब वह आत्मचिंतन (उपदेशानुसार) करने बैठा तो दिन भर के क्रियाकलाप मन में उभरने लगे—वह बेस्वाद भोजन, जमीन पर करवट बदलना....निश्चेष्ट-सा शांत हो प्रवचन सुनना.....रात तक जागना, भोर में फिर से उठना.... और घर की वह धूप निकलते तक खाट पर पड़े रहना....बेबात की बात पर बहू-बेटों पर अधिकार जताना....प्रतिकूलता पर कुढ़ना और झल्लाना....घर छोड़ देने की धमकी और घर छोड़कर भाग आना....सब कुछ चलचित्र की भांति मन में उभरने लगे तो वह भयभीत-सा हो गया। लगता है यह सब उसके वश का रोग नहीं है।

वह यहां और घर की सुविधा और असुविधा को तौलने लगा। यहां सभी अपने कर्तव्य आर दूसर की सेवा के प्रति समर्पित हैं, परन्तु उससे तो अपनी सेवा भी नहीं हो पाती। यहां सब के जीवन का हर क्षण अनुशासित और संयमित है, स्वच्छन्दता की कोई गुंजाइश नहीं। उसे लगता है यहां का जीवन तो मानो तलवार की धार पर चलना है। जिस सुख-सुविधा की आकांक्षा से वह यहां भाग कर आया था उसका तो यहां नाम तक नहीं है। यहां तो अत्यंत कठिन शारीरिक तथा मानसिक संयम की आवश्यकता है जिससे वह जिन्दगी भर दूर भागता रहा है।

उसके मन का अंतर्द्वन्द्व बढ़ता ही गया और वह उपस्थित रहकर भी अनुपस्थित-सा अतीत में खोया रहा। यंत्र वत प्रवचन में शामिल हुआ, भोजन किया और रात्रि में प्रवचन के बाद देर तक जागता रहा। सब लोग सो गये पर उसे नींद नहीं आयी। मन में उत्पीड़न-सी होती रही। सोचा—बिना सहे छुट्टी नहीं, फिर क्यों न यहीं रहूं। पर सुविधावादी मन नहीं मानता। घर में लाख झगड़े-झंझट होंगे फिर भी सेवा-टहल तो करंगे ही। सब कुछ अपने हाथों तो नहीं करना होगा। और वह अविलंब सामान समेटकर चुपचाप वहां से खिसका और तेजी से घर की ओर भागने लगा, जहां से दुखी होकर भाग आया था।

---

21. ईर्ष्या की आग

मास्टर रामप्रसाद शरोरांत तक इस बात के प्रति आश्वस्त रहे कि उन्होंने सारो जिन्दगी सम्मानपूर्वक नेकनीयती और सादगी में व्यतीत की है। उन्हें अपना अतीत दर्पण की तरह बेदाग और स्वच्छ दिखाई देता था। इसी कारण जब उन्होंने शरोर छोड़ा तब आशा के विपरोत यमदूतों को अपने इर्द-गिर्द खड़ा पाया तो वे रोने लगे। यमदूतों ने उसके रोने की परवाह नहीं की और घसीटकर यमराज के पास ले गये।

यमराज ने चित्रगुप्त का लेखा देखकर बताया—''इस जीव को आठ से बारह बजे तक बेंच में सीधा खड़ा रखो और दो से छह बजे तक मुरगा बनाओ।'' मास्टर रामप्रसाद का जीव यह सुनते ही फिर रो पड़ा, बोला, ''हुजूर, मुझे किस अपराध की सजा दो जा रही है?'' यमराज ने ठहाका मारकर कहा, ''मास्टर, तुम बच्चों को उनकी छोटो-छोटो गलतियों पर चार-चार घंट बेंच पर खड़े रखते और मुरगा बनवाते थे। तुम्हें फूल-सी नन्हीं जान पर जरा भी दया नहीं आती थी।''

जब उसे यातनागृह में ले जाया गया तब भी वह रो रहा था। पर अब रोने से क्या होता? वह चुपचाप बेंच पर खड़े होकर पछताने लगा कि वह मासूम बच्चों को अकारण दंड नहीं दिया होता तो आज स्वर्ग में सुख भोग रहा होता। यही सोचते-सोचते जब उसने चारों तरफ देखा तो उसे बहुत से चेहर परिचित से लगने लग। उसने जरा जोर देकर सोचा तो याद आया—एक तो उसके ही मुहल्ले का पटवारो था जो एक पटिया पर बैठकर खेत की नकल बनाकर फाड़ रहा था और रो रहा था कि यहां कोई किसान नकल के लिए पैसे नहीं देता था। दूसरा एक ओवरसीयर का जीव था वह मस्टररोल बनाकर ढेर करता जा रहा था पर उसके पास न तो एक पैसा था न कोई पेमेंट लेने वाला। वह बेचारा आह भरता और फिर मस्टररोल बनाने लगता था। तीसरा जीव जो उसने देखा वह एक डॉक्टर का था। वह मरोज की तरह पुरानी खटिया पर सोया था। वहां जब-तब एक यमदूत आकर उसे सुई लगाता और तीन-चार गोलियां जबरन उसके मुंह में ठूंसकर हंसता हुआ चला जाता था।

चारों ओर नरक ऐसे जीवों से भरा पड़ा था, और लागों को उनके कर्मों के अनुरूप उनको दंड दिया जा रहा था। कुछ दूर पर एक जगह बहुत से लोग खड़े तमाशा देख रहे थे। वहां एक सिपाही के जीव को कई यमदूत घेरकर तरह-तरह के सवाल पूछ रहे थे और कभी-कभी डंडे या लात से ठोकर मारते और भद्दी-भद्दी गालियां देते थे। यह सब देखते-देखते मास्टर का जीव अपना दुख भूल गया और वह हंसने लगा।

इस तरह कई दिन बीत गये। मास्टर का जीव चार घंट बेंच पर खड़ा रहता और चार घंट मुरगा बना रहता, फिर भी निरन्तर हंसा करता मानो उसकी जगह स्कूल का कोई विद्यार्थी बेंच पर खड़ा होता और मुरगा बनता हो।

उसको रोज इस तरह हंसते देखकर यमदूतों से रहा नहीं गया। उन्होंने पूछा, ''भाई, तुम्हें यातना दी गई है फिर भी तुम ऐसे हंसा करते हो जैसे कोई तमाशा देख रहे हो।'' तब मास्टर रामप्रसाद का जीव जोर से हंसा आर बोला, ''ये जीव, जो मेरो चारों तरफ यातना भोग रहे हैं वे मृत्युलोक में बहुत तरह से छल-कपटपूर्वक धन संचय करते और अत्यधिक विलासितापूर्ण जीवन बिताते थे, पर मैं अपनी असमर्थता के कारण इनकी यह जिन्दगी देख-देखकर जीवन भर ईर्ष्या की आग में जलता रहा। अब इनकी यह हालत देख बेहद खुश हूं। सच, ईर्ष्या की उस आग में जो तपिश थी उसकी तुलना में नरक की यह यातना तो कुछ भी नहीं है।

यह सुनते ही यमदूत ने दौड़कर यमराज को सारा हाल कह सुनाया। और यमराज ने तुरत उसे मास्टर बनाकर फिर पृथ्वी पर वापस भेज दिया।

---

22. बाकी सब खैरियत है

बाबा की उदास आंखें साधु को देखते ही चमक उठीं। जैसे उनको मन का संबल मिल गया हो। हमेशा की तरह आज भी वे घर के बाहर चबूतरा पर बैठे थे। परन्तु आज उनके चेहर पर मलिनता छाई हुई थी। शाम का वक्त था। दिन भर की भाग-दौड़ के पश्चात लोग

अपने घरों को लौट रहे थे। परन्तु बाबा को न जाने आज क्या हो गया था। आज वे अत्यंत उदास लग रहे थे। तभी उन्हें कोई साधु आता दिखाई दिया। वे दौड़कर घर से कंबल ले आये और आदरपूर्वक उनसे विराजने का आग्रह किया।

साधु महाराज अपने कमण्डलु के जल से हाथ-पैर धोय, कुल्ला किये और आसनी जमाकर बैठ गये। तत्पश्चात अत्यन्त मृदु स्वर में बोले, ''भगत जी, सब कुशल मंगल तो है!'' बाबा तो जैसे आज भर बैठे थे। उन्हें जी हलका करने का बस बहाना चाहिए था। उनके मन का गुब्बार एकदम फूट पड़ा मानो वर्षों से सड़ता हुआ किसी तालाब का गंदला पानी उसके पार के टट जाने से एकाएक बह निकला हो—''महाराज केवल मन की शांति नहीं....बाकी सब खैरियत है....। अब आपसे क्या कहूं, मुझे कोई तकलीफ नहीं है। मैं बहुत आनंदमंगल से हूं। बस, एक ही बात का रोना है, बाल-बच्चे मुझे पूछते नहीं। सब अपने-अपने राग में मस्त हैं। किसी को फुरसत नहीं कि कुछ देर ठहर कर मेरो ओर देख लें। मैं किस हालत में हूं कोई नहीं जानना चाहता। किसी को मेरो सुधि नहीं। मेरा सुख-दुख सिर्फ मेरा है, इसे बांट लेने वाला कोई नहीं। यह भरा-पूरा परिवार अत्यंत सूना-सा खाली लगता है। मैं अकेला बैठा अपने भाग्य को रोता हूं। ऐसी औलाद किसी को न मिले। मेरा अपना ही खून जिनके लिए मैं जीवन भर कोल्हू के बैल की तरह घसिटता रहा, मेरो देखभाल ठीक से नहों करते। क्या आज ये मेरो ही संचित संपत्ति पर इतरा नहीं रहे हैं? आज मैं शरोर से लाचार हूं तो किसी निरर्थक वस्तु की तरह, उपेक्षित जीवन जीने पर मजबूर हूं। पर इन्हें मर साथ ऐसा सलूक करने का क्या अधिकार है! जब ये छोट थे तो हमने कितने लाड़-प्यार से इन्हीं बच्चों का लालन-पालन किया था। इसी दिन के लिए तो नहीं.... ?'' बाबा लगभग रुआंसा हो गये थे। उनकी आवाज भींग गई थी।

इस समय शाम का धुंधलका घिर आया था। मुझे लगा बाबा रो रहे हैं। पर मैं उनके आंखों से आंसू बहते नहीं देख पा रहा था। इसलिए कुछ संतोष भी हुआ, शायद बाबा नहीं रो रहे....। पर आज जाना, मुझे हमेशा हंसाते रहने वाले बाबा भीतर से कितने दुखी है।। मैं दरवाजा के ओट में छिपकर बैठ गया। कहीं बाबा ने देख लिया तो आफत आ जायेगी। बाबा को दुखी देख साधु बोले ''यह तो दुनिया की रोति है, भगत जी....दुखी मत हो....।'' ''हां, महाराज, यही दुनिया की रोति है। भलाई के बदले बुराई। स्वार्थ के लिए अपने भी बेगाने हो जाते हैं। कोई किसी को नहीं पहचानता। अब देखो न, मेर चार बेट हैं, परन्तु चारों चार तरह के हैं। मेर खून-पसीने की कमाई, ये लोग इस बेरहमी से उड़ा रहे हैं मानो खैरात में मिली हो। अब तो किसी काम-खर्च के लिए भी मेरो सलाह-अनुमति की आवश्यकता नहीं। 'आह' वह कितना पीड़ादायक क्षण होता है, जब अपने ही घर में खुद उपेक्षित होता हूं। जी चाहता है, कहीं चला जाऊं या कुछ खाकर सो रहूं। एक दिन था जब मेरो मर्जी के बगैर इस घर में कुछ नहीं होता था, लेकिन अब वे दिन कहां रहे। कैसी विवशता है! मन तड़फता है उस दिन को लौटा लेने के लिए, लेकिन बीता हुआ समय कब लौटा है! बस महाराज इसी बात का दुख है, बाकी सब खैरियत है....।''

अब बाबा खामोश हो गये थे, जैसे अतीत में कहीं खो गये हों। उनको चुप देख साधु बोले, ''एक बात कहूं भगतजी..... ?'' ''कहो महाराज।'' बाबा जी अत्यंत क्षीण आवाज में बोले। ''भगत जी, अब आपका तीसरापन भी बीतने को है। आपने दुनिया का सुख-दुख भी देख लिया है। क्यों न अब शेष समय आत्म-कल्याण में लगाते?''

उनकी बात सुन बाबाजी गम्भीर चिन्ता में डूब गये। उन दोनों के मध्य एक गहरो खामोशी पसर गई। शाम का धुंधलका और गहरा हो गया था। मानो उस साधु ने कुछ न कहने लायक बात कह दी हो। फिर जैसे उस स्थिति से उबरते हुए बाबा बोले ''आप मझे साधु होने के लिए तो नहीं कह रहे हैं?''

''कुछ वैसा ही समझो।'' साधु बोले।

''नहीं महाराज, मैं ऐसी गलती नहीं करूंगा।''

बाबा का निर्णायक दृढ़ स्वर गूंज उठा—''अपने परिवार को छोडकर दर-दर भटकना कहां की बुद्धिमानी है? अपने, अपने ही होते हैं, चाहे गाली दें या लात मारं। मरने पर माटो तो देंगे। जीवन भर दुख सहता रहा हूं महाराज, यदि घर छोड़कर चला जाऊंगा तो मेरो जिन्दगी भर की कमाई का न जाने ये कैसा उपयोग करं। फिर आदमी सारो उम्र इसीलिए नहीं कमाता कि अंतिम दिनों में दर-दर भटकता फिर। यही तो समय है इसे आराम से भोगने का, आप कहते हैं इसे त्याग दूं। कैसे त्याग दूं महाराज, कैसे? नहीं महाराज ऐसा नहीं हो सकता।''

बाबा की बातें सुन मैं सोच में पड़ गया। बाबा इस घर में दुखी हैं फिर भी इसे छोड़ना नहीं चाहते, अजीब बात है। अब वे साधु फिर बोले, ''इस गृहस्थी का मोह छोड़े बिना मन की शांति नहीं है भगत जी, इसीलिए कहता हूं, अभी भी समय है, सम्हल जाओ.....नहीं तो पछताना पड़ेगा।''

बाबा कुछ घबराहट और असहमति में सिर हिलाते हुए बोले ''नहीं महाराज, मैं अपने घर में बहुत सुखी हूं....'' यद्यपि उन्हें लग रहा था कि उसके ही कथन में कहीं कुछ गड़बड़ जरूर है,.....फिर भी घर-गृहस्थी का मोह छोड़ पाना उन्हें अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा था। वे बोले ''महाराज, बस, एक ही बात का रज है कि आज मेर साथ, मेर सुख-दुख का साथी नहीं है। बस, उसी का अभाव मन को कचोटता है। उसके साथ बीते क्षण आज भी स्मृति में बुलबुलाते रहते हैं। उसकी यादें आज भी मुझे बेचैन करती हैं। जिन्दा रहने के लिए यहां कम से कम उसको यादों का तो सहारा है! आप उसे भी त्यागने को कहते हैं। नहीं महाराज,.....यही मेरा स्वर्ग है....मैं इसे छोड़कर नहीं जा सकता। बस महाराज बाकी सब खैरियत है...।'' इसके साथ ही बाबा झटपट उठे और घर के भीतर चले गये मानो वे साधु, बाबा को जबरदस्ती ले

जाने वाले हों।

---

23. दुख-अपना अपना

अमर जब घर पहुंचा तो दरवाजा बाहर से बन्द था। उसकी पत्नो शायद बाहर गई थी। वह दरवाजा ठेलकर भीतर चला गया। आज वर्षों बाद अमर घर लौटा था लेकिन घर में पांव धरते ही, वह असहज हो गया था। उसका अपाहिज वृद्ध पिता आंगन में घोंघी की तरह घिसट-घिसट कर रंग रहा था। बीच-बीच में कराहने की आवाज घर को श्मशान बना रही थी। अपने पिता की यह असहाय, जर्जर अवस्था देख उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उसका मन ग्लानि से भर गया। भीतर कुछ टटता-चटखता चला गया और वह फालिज मार हुए व्यक्ति जैसा होकर रह गया।

मन में उठते विचारों के तूफान दृश्य को जैसे मथ रहे थे। वह एक क्षण को एकबारगी चौंक गया जैसे कोई सुप्त चेतना जाग गई हो। 'क्या एक दिन उसकी भी यही हालत होगी? यह विचार उसके मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध गई और वह भयभीत होकर अपने पिता की ओर देखने लगा। पिता का उदास चेहरा गहरो वेदना से पीड़ित और विकृत दिखाई दे रहा था। उसे पिता के चेहर पर अपनी मौत की परछायीं दिखाई दे रही थी। उसने दोनों हथेलियों से अपने चेहर को ढांप लिया। उसकी सारो शक्ति और साहस जैसे निरन्तर क्षीण होती गई। उसका मन सहजिक आपराधिक भावना से भरता चला गया। अपने पिता की इस दशा के लिए वह दोषी है इसका एहसास उसे बड़ी तीव्रता से हो रहा था।

वर्षों बीत गये इस बात को, काश.....उस दिन अमर घर छोड़कर नहीं गया होता तो शायद आज यह दिन देखने न पड़ते। लेकिन अब क्या! बीता समय लौटकर कब आया है? और भागकर भी वह कहां सुखी रहा! निरन्तर चिन्ता और असुरक्षा की स्थिति को झेलता वह इधर से उधर भटकता रहा है। कर्मों ने जीव को भला कब छोड़ा है! घर में व्याप्त तनाव आर दुख से निजात पाने के लिए वह भाग खड़ा हुआ था। लेकिन मन कभी कहीं भी शांत नहीं हुआ। बहुत प्रयत्न के बाद भी अमर को अनुकूल वातावरण नहीं मिल सका, आखिर हारकर उसने एक निजी संस्था में नौकरो कर ली। यहां भी उसे सुविधा का अभाव खटकता रहा था। घर की याद आती तो उसका हृदय शोकाकुल हो जाता और वह एकांत में बिसुरने लगता लेकिन उसके पैरों में लज्जा की बेड़ी लगी हुई थी। वह घर नहीं आया और वर्षों निकल गये।

दरवाजा खुला देख उसकी पत्नो घबराई हुई भीतर आई तो अमर का खड़ा देख आश्चर्य से ताकती रह गई। जिसके लिए उसका हृदय रोज पसीजता था, जिसके याद में वह रोज दो आंसू बहाती थी, वह सम्मुख खड़ा था परन्तु न जाने क्यों आज वह कठोर हो गई थी। एकदम रस्मी तार पर अतिथि का सत्कार किया था। लोटा में पानी रख, खाट पर चादर डालकर खामोशी से भीतर चली गई थी। बच्चे अपने ही पिता को नहीं पहचान रहे थे। वे हक्का-बक्का अपने मां-बाप को देख रहे थे। उसकी पत्नो चूल्हा फूंककर चाय का पानी रख रही थी।

अमर हाथ-मुंह धोकर खाट पर पसर गया। पत्नो का व्यवहार उसे अस्वाभाविक नहीं लगा था। गलती उसकी ही थी। आखिर उसकी पत्नो का भी तो कुछ हक बनता है उस पर! उसने ही अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया फिर किसको दोष दे। उसकी दृष्टि इधर-उधर घूमकर पिता के ऊपर स्थिर हो गई और वह अतीत में खोता चला गया। इस घर की कच्ची दीवारों से जुड़ी हजारों अनगिनत स्मृतियां उसे भीतर तक बेधती चली गयीं। घर-आंगन सब कुछ वही है, कहीं कोई परिवर्तन नहीं, केवल उसका पिता बूढ़ा और असहाय हो गया है और अब धीर-धीर वह मृत्यु के निकट पहुंच रहा है। एक दिन था जब घर के सब सदस्य उसे सर आंखों पर उठाते थे। जब भी पिताजी कहीं से घर आते वह दौड़कर उनकी गोद में समा जाता। पिताजी खूब प्यार करते थे, तब वह कितना सुरक्षित और निश्चित महसूस करता था अपने आप को....। पर धीर-धीर समय के प्रवाह में सब कुछ बदलता चला गया। वक्त बीतते गये, उम्र बढ़ी शादी हुई; बहू आई और वह आहिस्ता-आहिस्ता परिवार से कटता चला गया। उसे मालूम ही न हुआ कि निरतर झरने वाला वह प्यार का स्रोत कब खाली होकर सूख गया।

सार रिश्ते-नाते केवल रस्म बनकर रह गये। मात्र दिखावा होता रहा, भीतर प्रेम का नाम तक नहीं। पुराने सम्बन्धों को जोड़ने की कोशिश में वह आंच पाये रबर की तरह सिकुड़ता चला गया था। जब-जब भी वह निकट से जुड़ने की चेष्टा करता, कहीं-न-कहीं कोई आघात लगता और कांच की तरह चटखकर उसका व्यक्तित्व कीरचों में बंटने लगता। निराश होकर उसने इस दिशा में प्रयत्न छोड़ दिया और सभी एक अनजाने तनाव में अपने भीतर कुण्ठा लिए जीते रहे कहने को बहुत कुछ होता पर सभी खामोशी को ढो रहे थे। शापग्रस्त

की तरह सभी अप्रिय घटना की आशंका से अभिभूत घुटते जा रहे थे। अब तक वह दो बच्चों का पिता बन चुका था। लेकिन दिन-ब-दिन वह अपने ही घर में अजनबी होता जा रहा था। इस दहशत और तनाव का कारण किसी की समझ में नहीं आता था। शायद इसका वजह अमर की बेरोजगारो थी। कोई युवा व्यक्ति घर में बैठे-ठाले दिन काट यह कोई गवारा नहीं करता। पत्नो पूछती कि आखिर इतने उदास क्यों रहते हो? वह सूनी आंखों से पत्नो को देखकर हंसने का प्रयत्न करता। कहता कुछ भी नहीं। हंसने का वह प्रयत्न रोने से भी अधिक हृदय-विदारक होता था। बेचारो मन मसोस कर रह जाती और एक दिन अमर रात को घर से चुपचाप भागकर इनसे छुटकारा पा लेना चाहा था पर उसे छुटकारा कहां मिला था। भागकर वह जहां भी गया पहले से अधिक अशांत और अस्थिर होता गया था। गो कि, नासमझी में उठाये इस कदम का उसे बेहद अफसोस हुआ था। उसकी पत्नो चाय बनाकर ले आई थी। अमर को विचारों में डूबा देख झकझोर कर बोली ''कहां खो गये.....लो चाय पियो...।'' ''अं।'' वह वर्तमान में लौटते हुए पत्नो की ओर देखा, उसकी पनीली आंखें झिलमिला रही थीं।

वह खामोशी से चाय पीता रहा माना अतीत उसका पीछा नहीं छोड़ रहा हो। अमर का ध्यान फिर अपाहिज पिता के ऊपर केन्द्रित हो गया। चाय की प्याली नीचे रखते हुए बोला ''मैं नहीं समझ सका कि पिता की हालत इतनी दयनीय होगी।''

''क्या मेरो चिट्ठी मिल गई थी?''

''हां...लेकिन छुट्टी नहीं मिली इसीलिए नहीं आ सका। अब पछताता हूं पिता की सेवा न कर सका, जीवन अकारथ गया। घर में ही रहकर सह लिया होता तो मन को शान्ति मिली होती। मैं अभागा रहा, सब कुछ खोकर भी कुछ न पाया। अब जीवन भर इसका दुख रहेगा। मेर कारण तुम सबको बहुत दुख उठाना पड़ा।'' अमर की दुखभरो बातें उसे भीतर तक सालती चली गयीं।

संकट और दुख की गरमी से भी उसके भीतर की जमीं बर्फ पिघल नहीं सकी थी, वह आज सहानुभूति की हवा पाकर ही पिघलने लगी थी। वह अधीर होकर बोली ''मैंने शक्ति चले तक आपके माता-पिता की सेवा की है...। अकेली जान कहां तक लड़ती....। फिर आपके चले जाने का सारा दोष मुझ पर ही मढ़ा गया। मैं यह घर छोड़कर कहां जाती.... ?'' उसकी आवाज भीगती जा रही थी.... ''इन बच्चों को लेकर न मर सकती थी न जी सकी। फिर एक दिन, मुझे कोसते-कोसते मां भी चली गयी। सच, मैंने मां से कभी कोई शिकवा नहीं किया लेकिन मां मुझे हृदय से नहीं अपना सकी....उस दिन मुझे लगा था कि इस दुनिया में मेरा कोई नहीं....। उस दिन मैं कितना अकेलापन महसूस कर रही थी आपको कैसे बताऊं... ? इस दुर्घटना के बाद पिताजी निरतर टटते गये फिर एक दिन आपका पत्र मिला। खुशी के मार दिन भर रोई। पिता जी को बतायी तो क्षण भर को उनकी बूढ़ी आंखों में चमक आयी फिर धीर-धीर बुझ गई। वह भी बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोये थे। बार-बार पूछते थे, ''कहां है, कैसा है, कब आने को लिखा है। मरते वक्त उसकी मां उसे देखने को तरस गयी....।'' मां को अन्त तक इस बात का दुख रहा कि पुत्र के होते हुए वे बुढ़ापा में बेसहारा रहीं। पिता जी शायद आपके आने की आस में ही आज तक जीवित हैं। उनकी दृष्टि तो चली गयी, कान भी अपना धर्म छोड़ रहे हैं....।'' उसकी आवाज सिसकियों में डूब गयी थी।

पिता के कराहने की आवाज से वे दोनों चौंक गये। उसकी पत्नो दवा लेने चली गयी। अमर अपने पिता को देखने लगा। उसके सम्पूर्ण शरोर में जड़ता के चिह्न उभर रहे थे। उसकी इच्छा हुई कि दौड़कर पिता के चरणों में सिर रखकर फूट-फूटकर रोय और क्षमा मांगे पर वह ऐसा नहीं कर सका। उसके भीतर की सारो आदता जैसे सूख गई थी वह आह भर कर रह गया। उसकी बहू दवा पिलाकर वृद्ध के कानों में जोर से चिल्लाकर बताती है कि आपके पुत्र आये हुए हैं। वृद्ध के शरोर में न जाने कहां से अकल्पनीय शक्ति का संचार हुआ, वह उठ बैठा। उसकी आंखों में हलचल हुई और झर-झर आंसू बहने लगे। उसने अपने दोनों हाथ फैला दिया। अब अमर से रहा नहीं गया उसने पिता के चरणों पर अपना सिर रख दिया। उसके पिता अमर के सिर पर हाथ फेरते थे और रोते थे। अमर पत्थर की भांति निष्ठुर बना पिता के स्पर्श को झेलता रहा यह सोचते हुए कि वह अपना दुख किससे कहेगा।

---

24. आसक्ति

सेठ करोड़ीमल एकदम मरणासन्न स्थिति में बिस्तर पर पड़े हैं। उन्होंने अपना बिस्तर एकदम तिजोरो के पास सटाकर बिछवा लिया है। वे चाहे जिस स्थिति में लेटं उनका एक हाथ तिजोरो को बराबर स्पर्श करता है। कुछ दिनों से उन्हें इस बात का बराबर एहसास हो रहा है कि अब वे इस दुनिया में अधिक दिनों के मेहमान नहीं हैं लेकिन धन का मोह किसी तरह कम नहीं होता।

पिछली रात को वे एकदम चौंककर चीख पड़े थे। सब लोग भागकर सेठ जी के कमर में पहुंचे तो अचम्भे में पड़ गये। सेठ जी तिजोरो को दोनों हाथों से पकड़े बुरो तरह हांफ रहे थे और बदहवासी में चिल्ला रहे थे, ''नहीं, नहीं...मुझे कुछ दिन और रहने दो, मुझे थोड़ा-सा वक्त और दे दो।... ।'' जब लोगों ने उन्हें झकझोरकर जगाने की कोशिश की तो वे और भी भयभीत होकर तिजोरो से चिपट गये ''नहीं जाऊंगा....नहीं जाऊंगा... मुझे छोड़ दो.... ।'' सब लोग हतप्रभ खड़े देख रहे थे मानो यमदूत उसे बरबस खींचकर ले जाना चाहते हों।

कुछ देर पश्चात जब सेठ जी को होश आया और उन्हें विश्वास हो गया कि हम लोग यमदूत नहीं बल्कि परिजन तथा नौकर-चाकर हैं तब वे थरथराते हुए बोले ''भयानक आकृति वाले दो यमदूत मुझे जबरदस्ती ले जाना चाहते थे, कहते थे, अब तुम्हारा चलने का समय आ गया है, हमार साथ चलो।'' मैंने कहा, ''नहीं, नहीं....अभी ठहरो...मैंने तो अभी कुछ किया ही नहीं। जिन्दगी भर बड़ी जुगत से यह धन जोड़ा है उसका तो मैंने अभी उपभोग ही नहीं किया, मुझे कुछ वक्त और चाहिए।'' इस पर वे दोनों यमदूत ठठाकर हंसने लगे। मैंने पूछा, ''तुम लोग इस तरह हंस क्यों रहे हो, मैं सच कह रहा हूं।'' मेरो बात सुनकर वे लोग चुप हो गये और बोले, ''अर, मूर्ख, त् हमेशा यही कहता रहा कि मेर पास समय नहीं है! आज तुझे अस्सी वर्ष पूर हो गये। विधि का विधान नहीं टल सकता। तीस वर्ष की उम्र में, जब तुम एक दुर्घटना में बुरो तरह आहत हो गये थे, तुम्हें चेतावनी दी गयी थी कि यह शरोर हमेशा नहीं रहने वाला है और तुम्हारो उम्र बीतती जा रही है। लेकिन एक क्षण को जागकर तुम फिर बदहवास हो गये। जब भी तुम्हें किसी सत्कर्म की ओर प्रेरित किया तुमन यही कहा कि समय नहीं है। जब अस्सी वर्ष तुम्हार लिए कम रहे तो अब तू क्या कर लेगा?'' कहते-कहते सठ जी लगभग रुआंसा हो गये। उन्होंने अपने बेट को पास बुलाकर कहा, ''तुम यहीं पर रहो मुझे बड़ा डर लग रहा है, और हां! मेरो तिजोरो को सम्हाल कर रखना इसे यों ही उड़ा मत देना, मैंने बड़ी मेहनत से इसे सहेजा है, आज छूट रहा है... ।''

सेठ जी भयभीत नजरों से इधर-उधर देख रहे थे मानो उन्होंने किसी के आने की आहट सुनी हो। एकाएक उनका शरोर फिर पत्ते की तरह कांपने लगा। उनके चेहर पर मौत की परछाई मंडराने लगी और वे फिर तिजोरो से चिपटकर चिल्लाने लगे, ''वे फिर आ गये...बचाओ.... बचाओ...'' और धीर-धीर उनकी आंखें चढ़ गईं तथा प्राण पखेरू उड़ गये। लेकिन सेठ करोड़ीमल के दोनों हाथ अभी तक तिजोरो के हैंडल में अटके थे।

---

25. संबल टट गया

श्मशान में रामू की चिता जल रहो थी और उसका बड़ा बेटा राजू घुटनों में मुंह छिपाये सिसक रहा था। रामू की मौत की खबर सुनते ही मैं भागा था फिर भी मुझे पहुंचने में देरो हो गई थी। मैंने राजू के कंधे पर हाथ रखा तो वह सहानुभूति का स्पर्श पाकर और बिलख पड़ा। मैं जी कड़ा करके उसे समझाने की चेष्टा करता हूं, ''मत रो राजू, धीरज से काम ले, यह संसार ही ऐसा है। यहां कोई किसी का नहीं। सार रिश्ते-नाते केवल क्षणिक हैं। आंख बंद होते ही प्रभात के तार की तरह अदृश्य हो जाते हैं, फिर एक-न-एक दिन तो सबको यहां से जाना ही है। जो बीत चुका उसे लौटा नहीं सकते.... ।'' परन्तु भीतर ही भीतर दिल रो रहा है। मेरा एक अंतरग मित्र खो गया था। बेहद नेक और ईमानदार। कई बार उसे देखकर लगा था कि मैं गलत रास्ते पर जा रहा हूं, क्या हुआ जो मेर पास कुछ रुपये अधिक हैं लेकिन उसका चरित्र उज्ज्वल है... । और आज वह अचानक इस दुनिया को छोड़कर चला गया था।

मेरो अपनी ही बातें मुझे अर्थहीन-सी प्रतीत होती हैं, पर-उपदेश की तरह....इस परिस्थिति में क्या अपने को संयत रख पाता! या ये सब दार्शनिक बातें दूसरों के लिए ही होती हैं या अपना दुख बड़ा और दूसरों का छोटा होता है... । राजू के सिर पर से बाप का साया उठ गया था और आज वह अनाथ और असहाय हो गया था। पहाड़ की तरह परिवार की सारो जिम्मेदारो उसके कंधे पर आ पडो थी।

रामू का शव लगभग जल चुका था और अब राजू भी रोते-रोते थककर चुप हो गया था। उसकी आंखों के आंसू ही जैसे सूख गये थे। लोगों के चेहर पर अब मौत का खौफ शेष नहीं था और अब वे बड़ी निश्चिंतता से इधर-उधर की बातें कर रहे थे, लेकिन रामू के संबंध में कोई भी कुछ बोल नहीं रहा था। शायद उसके विषय में बातें करते लोग कतरा रहे थे। रामू एक निहायत ही ईमानदार और सख्त स्वभाव का व्यक्ति था और आज उसकी ईमानदारो भी उसके शरोर के साथ चिता में जल रही थी। सांसारिक लोगों की तरह जीवन और मृत्यु ने भी उसके साथ छल किया और वह युवावस्था में ही इस संसार से विदा हो गया। शायद लोगों को संतोष रहा हो कि एक विजातीय व्यक्ति

का लोप हो गया। जो हमेशा कांट की तरह खटकता रहा है।

जलती चिता को लोगों ने बांस से कोच-कोचकर देखा और इत्मीनान करने के बाद कि वह पूरो तरह जल जायेगा चलने लगे।

राजू खड़े होकर चिता की तरफ देखा और सिसकने लगा, अब उसे पग-पग पर डांटने और दुलारने वाला चला गया था। एक कवच जो हमेशा मुसीबत में उसके परिवार को घेरकर सुरक्षित रखता था टटकर बिखर गया था। राजू का चिंता में डूबा चेहरा और भी करुण हो गया। मैं उसे सहारा देकर सामने ले जाता हूं और फिर लोग एक-एक कर चलने लगते हैं। ''रामू कोयले के खान से भी बेदाग निकल गया।'' पीछे से किसी ने कहा। ''हां, अपना असूल तोड़कर जिंदा रहना उसने गवारा नहीं किया, वरना यहां तो लोग सब कुछ खोकर भी जी रहे हैं....।'' एक और व्यक्ति ने कहा। फिर खामोशी छा गयी।

राजू को घर तक पहुंचाकर लोग अपने-अपने घरों को चले गये। घर में पांव धरते ही राजू फिर सिसकने लगा। उसकी आवाज सुन बच्चे और उसकी मां भी रोने लगी। समूचा घर दुख में डूब गया। मैं असमंजस की स्थिति को झेलता हुआ भारो मन लिए रामू के विषय में सोचने लगा—एक सीधा-सादा सपाट चेहरा वाला व्यक्ति, लगता है मेर सामने आकर खड़ा हो गया है....यह व्यक्ति आजीवन ईमानदारो का दामन थामे रहा, पर इसे मिला क्या? लोगों के ताने, उलाहने, पग-पग पर मुसीबतें और अंतहीन अभावों की गठरो। जीवन सदा एक ही लीक पर शांतिपूर्वक, नीरसता से चलती रही। अपनी धुन में मस्त, न किसी से कोई शिकवा, न शिकायत। इस समाज में जहां जीवन का हर पहलू सापेक्षिक है, रामू दरिद्रता में भी कैसे संतुष्ट बना रहा, कहा नहीं जा सकता...।

शायद वह जीवन भर दुखों को झेलता रहा। हो सकता है शायद वह भीतर से सुखी रहा हो, किसी फक्कड़ फकीर की तरह जिसके पास कहने को कुछ भी नहीं होता फिर भी दीन-दुनिया से बेखबर मस्त बना रहता है। पर रामू फकीर नहीं था, उसके पीछे कई जानें लगी थीं जिनके भरण-पोषण की जिम्मेदारो उस पर थी और वह इस जिम्मेदारो से मुकर नहीं सकता था। लेकिन जब वश नहीं चला तो कायर की तरह इस दुनिया से ही चला गया। सार पपंचों से आंखं मूंदकर सो गया सदा-सदा के लिए। सब लोग जगाते रहे पर वह हिला तक नहीं। जिन्दगी में किसी को धोखा नहीं दिया, किसी से बेईमानी नहीं की, पर जाते-जाते यह नेक काम भी कर गया। सदा की दोस्ती को पल में तोड़कर चला गया। पत्नो और बच्चों को बीच मंझधार में बेसहारा कर दिया।

कुछ आगन्तुक महिलाओं के पदचाप से उस घर की नीरवता भंग हो गई और मैं रामू की यादों से कटकर वर्तमान में आ गया। वे महिलायं सहानुभूति प्रकट करने आयी थीं। उनमें से एक औरत जो उम्र में सयानी लगती थीं कुछ उदास स्वर में बोली—''यह सब कैसे हो गया बहन? कल तक तो सब कुछ ठीक-ठाक था।'' राजू की मां कुछ भी नहीं बोलती। उसकी आंखों से अनवरत आंसू गिरने लगते हैं। तब वह औरत राजू की ओर देखकर बोलती है, ''क्या हुआ बेटा, राजू?'' राजू एक गहरो नि:श्वास छोड़कर बोलता है, ''क्या बताऊं चाची....इधर कुछ दिनों से पिताजी बराबर परशान रहते थे। विशेषकर जब से उन्हें कचहरो का काम पड़ा था। मैंने कई बार उनसे कहा था कि अपनी जमीन कहीं भाग नहीं रही है, कभी-न-कभी आपके नाम पर आ ही जायेगी, आप उसके पीछे परशान न हों; पर वे माने नहीं, कहते थे—बाद में बड़ी उलझन होगी, कोट-कचहरो के काम को तुम नहीं समझते। वे रोज कचहरो जाते और शाम को निराश लौट आते थे। जब हर तरह की खानापूर्ति हो जाने क पश्चात भी काम नहीं हुआ और समय बीतने लगा तो समझ गये कि बिना रुपये दिये काम नहीं होगा। यह उनके लिए अत्यन्त कष्टदायी क्षण थे। इस कशमकश में कई दिनों तक वे छटपटाते रहे और अन्त में उन्होंने चाचा जी से उधार लाकर सम्बन्धित अधिकारो को रुपये दकर कल ही सब कागजात सहित शाम को लौट आये। वे जब घर लौट तो अत्यन्त शांत और गम्भीर थे।''

एक अजीब उदासी में घर डूबा हुआ था और राजू सिर झुकाये भारो आवाज में बोल रहा था—रात में जब हम सब भोजन कर रहे थे तब उन्होंने कहा था, ''कचहरो का काम हो गया लेकिन इसके लिए मुझे भारो कीमत चुकानी पड़ी है। आज मेरा ईमान, मेरो इज्जत सब कुछ बिक गया। जिस बुराई से आज तक अपने को बचाते रहा आज उसी से मेरा चरित्र कलंकित हो गया। मैंने अपने मित्र से पांच सौ रुपये लेकर सम्बन्धित अधिकारो को दिया है तब जाकर काम हो पाया।'' और वे खामोश हो गये थ। फिर नित्य की तरह उठकर सोने चले गये। हमें क्या मालूम था कि वे हम सब को छोड़कर हमेशा के लिए सो जायेंगे। सबेर बिस्तर पर उनका निर्जीव शरोर पड़ा था।

---

26. हमारा धर्म?

दनदनाती हुई सारनाथ एक्सप्रेस प्रयाग की ओर बढ़ रही थी। एक भिखारो गंगा मैया के नाम पर भीख मांग रहा था। वह अनेकों के सामने हाथ पसारकर गिड़गिड़ा चुका था पर किसी ने उसे एक पैसा भी नहीं दिया था। आखिर वह एक चन्दनधारो व्यक्ति के सामने खड़ा होकर कहन लगा, ''गंगा मैया के नाम पर दस पैसे दे दो बाबू।'' शायद उसे यकीन था कि वह व्यक्ति उसे कुछ-न-कुछ अवश्य देगा। पर

उसका अनुमान गलत निकला। वह चन्दनधारी व्यक्ति क्रोध से तिलमिलाकर बोला ''गंगा मैया के नाम पर तुझे क्यों दूं, तुझे देने से क्या मुझे स्वर्ग मिल जायेगा?'' वह भिखारी हक्का-बक्का देखते खड़ा रहा। सारनाथ एक्सप्रेस दनदनाती हुई गंगा के पुल पर से गुजरने लगी। अनेकों ने हाथ जोड़कर गंगा को प्रणाम किया और सिक्के उछाल दिये। चन्दनधारी उस व्यक्ति ने भी अठन्नी फेंकी और प्रणाम किया। वह भिखारी टुकुर-टुकुर ताकता रह गया, उसे किसी ने एक पैसा भी नहीं दिया। वह भिखारी मायूस होकर वहां से जाने लगा।

परन्तु पास बैठे एक व्यक्ति से रहा नहीं गया, आखिर उसने पूछ ही लिया, ''क्या, अब आपको स्वर्ग मिल जायेगा?'' चंदनधारी व्यक्ति की त्यौरियां चढ़ गयीं पर वह कुछ नहीं बोला, आंखें फेरकर दूसरी तरफ देखने लगा।

---

27. मापदण्ड

जब अमीर को अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो वह सोच में डूब गया। मां तो पहले ही चल बसी थी और आज उसका पिता भी परलोकी हो गया था। अमीर का अपने पिता से कभी नहीं बना, उसकी हरकतों से तंग आकर उसका पिता अलग हो गया था और इस तरह अमीर को मौजमस्ती करने की पूरी छूट मिल गई थी। जब तक माता-पिता जीवित रहे वह कभी उनकी तरफ झांका तक नहीं। बेचार अपने कर्म को रोते-पीटते चल बसे। वह जानता था गांव का हर व्यक्ति उससे घृणा और नफरत करता है लेकिन अपने पिता के जायदाद का वारिस वही था इस तरह उसका चिंतित होना लाजिमी था। आज वह उनके प्रति अथवा कहें, अपने प्रति अप्रत्याशित ढंग से सजग होकर सोचने लगा।

उसे अपने पिता की मुक्ति की चिन्ता सताने लगी वह भागकर गया और अपने पिता की लाश से लिपटकर बिलख-बिलख कर रोने लगा। लोगों ने बड़ी मुश्किल से उस लाश से अलग किया और शव के अन्तिम संस्कार के लिए श्मशान घाट ले गये। वहीं अमीर ने घोषणा की कि वह अपने पिता की मुक्ति के लिए उनकी अस्थि को प्रयाग में ले जाकर संगम में विसर्जित करगा और दान-पुण्य करके अपने पिता की आत्मा को स्वर्ग का अधिकारी बनायेगा। लोग आश्चर्य से उसका मुंह ताकने लगे। बहुतों को अमीर के पिता के भाग्य से ईर्ष्या होने लगी। लोग कहने लगे, ''चाहे जो हो, अपना खून आखिर अपना ही होता है। जीते जी अमीर का पिता नरक-यातनाएं झेलता रहा, परन्तु अब वह स्वर्ग का सुख भोगेगा। भगवान हर एक को अमीर जैसा पुत्र दे।''

---

28. हनुमान जी की आंखें

मैं हनुमान जी महाराज का अनन्य भक्त और मेर ही घर में चोरी हो गई। पण्डिताइन की सारी जमापूंजी गहने, जेवर सभी चोर ले गये। कुछ समझ में ही नहीं आता, अक्ल कुछ काम नहीं करता। यह सब कैसे हो गया। महाराज हनुमान की मूर्ति के पीछे रखा सोना गायब था और हनुमान जी औंधे मुंह जमीन पर पड़े थे।

मेरा दृढ़ विश्वास था कि हनुमान जी मेरी रक्षा करंगे और मेरा सामान एक दो दिन में अवश्य मिल जायेगा। मैंने थाने में रपट नहीं लिखाई और दूसर दिन हनुमान जी के बड़े मन्दिर में पहुंच गया, हनुमान जी के दर्शन करने। मैं दीन हाकर अत्यन्त कातर स्वर में मूर्ति के सामने रोया, गिड़गिड़ाया, सारी कहानी कह सुनाई लेकिन मूर्ति हिली तक नहीं। मैंने सोचा था, भगवान विपत्ति में सदा सहारा देते हैं। सो, मैं गौर से मूर्ति की आंखों में झांकने लगा, शायद कोई लक्षण दिख जाये। उसी समय लगा कि हनुमान जी की आंखों की चमक पहले की तरह नहीं है। मन एकदम विचलित हो गया। तुरन्त मूर्ति के सामने से उठा और प्रमुख पुजारी के सामने जा खड़ा हुआ। उसे साष्टांग प्रणामकर पूछा, ''महाराज, हनुमान जी की आंखों की चमक गायब हो गयी?'' पुजारी जी महाराज का चेहरा क्षण-भर को मलिन हो गया, परन्तु वे तुरन्त सम्हलकर बोले, ''बेटा, यह तुम्हारा वहम है, मूर्ति की आंखों में हीर जड़े हुए हैं और हीर कभी अपनी चमक नहीं खो सकते....।'' पुजारी महाराज अन्यत्र चले गये और मैं ठगा-सा खड़ा रह गया।

मुझे पुजारी की बातों का विश्वास नहीं हुआ। मैं दुबारा मूर्ति के सामने जाकर खड़ा हो गया। अब भ्रम नहीं रहा, वहां हीर नहीं, कांच लगे थे। मन डांवाडोल होने लगा। बजरग बली की आंखें ही बदल दी गयीं और हनुमान जी ज्यों-के-त्यों असहाय-से स्थिर हैं। लगता है सब कुछ गड़बड़ा गया है। वर्षों की मान्यताएं, वर्षों का विश्वास क्षणभर में हटता जा रहा था। मैं बदहवास-सा मन्दिर की सीढ़ियां उतरने

लगा। मन और तन दोनों थकते जा रहे थे। बदन पसीने से थपथपा गया और कंठ प्यास से सूख गया। डगमगाते कदमों से पास के पनवाड़ी के पास गया और पानी मांगा। वह मेरो हालत देख झटपट एक गिलास पानी लाकर पिला दिया। जब मैं कुछ सामान्य हुआ तो वह पूछने लगा, ''क्या हुआ भाई?'' मैंने अपने को सम्हालते हुए कहा, ''भैया, मुझे एक बात बताओ।'' ''पूछो...।'' उसने उत्सुकता से मेरो ओर देखते हुए कहा।

''हनुमान जी की आंखों के हीर कहा गये?''

उस पनवाड़ी ने चारों तरफ सतर्कता से देखा और धीर से बोला, ''चोरो हो गये; हनुमान भक्त लगते हो।''

''हां, क्या सचमुच चोरो हो गये...?''

''हां, इसमें अचरज की कौन-सी बात है?''

''क्या हनुमान जी रोक न सके...?'' मुझे विश्वास नहीं हो रहा था।

जवाब में पनवाड़ी इतनी जोर से हंसा कि आसपास के सब लोग उसकी तरफ देखने लगे और मैं झेप गया।

---

29. मैं पूछता हूं

रामदास को जब उसके लड़के का पत्र मिला तो वह एकदम जड़-मूर्ति हो गया। वर्षों बाद श्याम का पत्र आया था। आज सब कुछ उलट-पलट गया है। जीवन-मरण का अर्थ ही जब निरर्थक हो गया है तब क्या करगा वह इस पत्र का? मन में विचारों के बवंडर घुमड़ने लगे हैं और चेहर की झुर्रियां और भी गहरा गई हैं। मन अत्यन्त अशांत और अस्थिर हो गया है।

डाकिया चला गया तो वह अपनी झुर्रादार चेहर पर हाथ फिराकर नि:श्वास छोड़ता भीतर की ओर मुड़ गया। पत्र मेज पर फेंककर खाट पर असहाय-सा लुढ़क गया। जीवन से निराश, तटस्थ रामदास के मन में फिर एक बार जीवन के प्रति मोह जाग गया। प्यास से तड़पता प्राणी जिस तरह पानी मिलने की उम्मीद मात्र से चंचल हो उठता है वैसे ही रामदास की बूढ़ी हड्डियों में फिर चपलता दौड़ गई। लेकिन विगत की कड़वी-कसैली स्मृतियां उसे झकझोरने लगीं और वह अतीत की ओर लौटने लगा...मौत के आगोश में समाती पत्नो का करुण चेहरा उसके सामने उभर आया और उसकी आंखें सजल हो गयीं। वह बार-बार श्याम को देखने की जिद्द कर रही थी। पर उसकी यह अन्तिम इच्छा भी अधूरो ही रह गई और वह लाचार हो ताकता रह गया था। पत्नो बेटा को अन्तिम बार देखने की आश लिये संसार से विदा हो गई और वह इस संसार का दुख भोगने के लिए अकेला रह गया।

अनेकों पत्र लिखने के बाद भी न तो श्याम स्वयं आया और न ही कोई पत्र लिखा। फिर तो रामदास की जिन्दगी में जैसे जहर ही भर गया। सब कुछ रोता और तिक्त होता चला गया, पर मन की आशा नहीं टूटती। आदमी हर कीमत पर अपनी सांसों को बचाये रखना चाहता है। एक अपाहिज की तरह रामदास अपनी जिन्दगी को घसीटता रहा। बेट की याद छाती के नासूर की तरह सालता रहा। हृदय की पीड़ा तब और भी बढ़ जाती जब पड़ोसी का बेटा रामू आकर श्याम की खोज-खबर लेता।

आज भी रामदास को वह मनहूस दिन याद है जब बहुत प्रयत्न के बाद भी घर में रहकर पेट की आग को शांत नहीं कर सके थे और कहीं से कुछ मिलने की आशा ही नहीं रही, तब विवश होकर श्याम को परदेश जाकर कमाने के लिए भेजा था। पड़ोसी का बेटा रामू और श्याम दोनों साथ-साथ इस गांव से चले थे परन्तु श्याम न जाने कहां अचानक गायब हो गया.....और रामू को अच्छी नौकरो मिल गई थी। उसे वेतन से अधिक ऊपर की आमदनी होती थी। कुछ ही दिनों में उसका रहन-सहन, नाक-नक्श सब कुछ बदल गया था। वह सुकुमार और सुन्दर लगने लगा था। धीर-धीर उसके पड़ोसी का घर-आंगन भी सजता-संवरता चला गया था और रामदास का घर जर्जर होकर टूटता जा रहा था। वह पैसे-पैसे को मोहताज हो गया था। तब रामदास को कितना दुख होता था। तब वह सोचा करता ऐसे संतान से तो नि:संतान रहना बेहतर था, परन्तु आज वर्षों बाद श्याम का पत्र मिला तो वह एक अजीब उलझन में डूबता चला गया।

उसकी तन्द्रा टूटो और वह आतुरता से पत्र पढ़ने लगा–''पूज्य पिताजी, साष्टांग प्रणाम, मैं आप लोगों की सेवा नहीं कर सका, शायद यह मेर भाग्य में नहीं था, इसीलिए तकदीर ने मुझे आप लोगों से दूर ढकेल दिया। मैं अपने को समाज के अनुरूप नहीं ढाल सका इसलिए दर-दर की ठोकरं खाता हुआ भटक रहा हूं और जो खुद भटक रहा हो वह किसी को क्या सहारा दे सकता है। जिसे मैं समाज-सेवा समझता था वह तो एक भ्रम साबित हुआ। इससे तो मैं अपनी ही सेवा नहीं कर सका। समाज-सेवा के फेर में मैं खुद तबाह हो गया और उसी समाज के बीच आज मैं एकदम एकाकी हो गया हूं। लेकिन पिताजो, आप ही तो कहा करते थे कि चाहे जो हो पर अपना ईमान नहीं खोना। अधर्म की कमाई से भूखों मरना अच्छा है। इसी सत्य और धर्म के पीछे चलते-

चलते थक गया हूं, अब और नहीं सहा जाता। पिताजी, कुछ और रास्ता बताइये ताकि मैं भी सुखपूर्वक रह सकूं और आप लोगों की सेवा कर सकूं।

आपका पुत्र

श्याम

पढ़ते-पढ़ते रामदास की आंखें छलछला गई हैं। उसकी आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे हैं। परन्तु दर्प से उसका सीना चौड़ा हो गया है, क्योंकि उसका बेटा ईमान और धर्म नहीं छोड़ा, क्या हुआ जो वह आजीवन दुख झेलता रहा। व्यर्थ ही वह अपने बेट को कोसता रहा है। आज रामदास को अपने बेट पर गर्व हो रहा है, क्योंकि वह सीना तानकर कह सकेगा कि उसका बेटा सत्य और धर्म का रक्षक है, लेकिन उसका पड़ोसी कहता है कि इन सब कोर आदर्शों से पेट नहीं भरता। उस सत्य और धर्म को धारण करने का क्या लाभ जिससे आदमी दाने-दाने को मोहताज हो और जिन्दगी भर दुख ही झेलता रहे। उसे अपने बेट पर नाज है जो खुद सुखपूर्वक रह रहा है तथा उसे भी सुखपूर्वक रखा है। उसका बेटा भी कमाकर नहीं भेजता तो शायद आज उसका भी जीवन नरक बन गया होता।

अब मैं पूछता हूं दोनों में किसका दावा उचित है, रामदास का या उसके पड़ोसी का? एक का बेटा समाज का सेवक ह तो दूसरा अपने मां-बाप का भक्त। आप बताइये किसका व्यक्तित्व महान है और आप किसे श्रेष्ठ कहेंगे श्याम को या रामू को?

---

30. उसकी भक्ति

गो कि, मुझे आज तक समझ नहीं आया कि लोग पूजा क्यों करते हैं! जब भी किसी को पूजा करते देखता हूं या फिर पूजा की घंटो सुनता हूं तो मन में अकुलाहट-सी पैदा होने लगती है। सोचता हूं उसी से जाकर पूछ लूं परन्तु ऐसा नहीं कर पाता। इधर कुछ दिनों से सेठ गंगाप्रसाद की धार्मिकता को देखकर हैरत में पड़ गया हूं। प्रातः दूकान पर जाने के पहले और रात्रि नौ बज दूकान से लौटने के पश्चात रोज बिना नागा किये पूजा करते हैं। यह उनका नित्यकर्म है।

परन्तु लोग कहते हैं कि सेठ गंगाप्रसाद पूरा राक्षस है। वह सब चीजों में मिलावट करता है, तौल में कांटा मारता है और कीमत भी जासतो लेता है। कौड़ी-कौड़ी को दांतों से पकड़ता है। उसके दिल में रहम नाम की कोई चीज ही नहीं है। ऐसे बेईमान को तो भगवान नरक में भी जगह नहीं देगा। परन्तु न जाने क्यों सेठ गंगाप्रसाद को लोगों की बद्दुआ नहीं लगती, वह लगातार गोल-मटोल और चिकना होता जा रहा है तथा उसकी तोंद है कि बढ़ती ही जाती है। लोगों की बातों का विश्वास नहीं होता। सबेर-शाम पूजा करने वाला व्यक्ति क्या ऐसा हो सकता है?

जब मैं सेठ गंगाप्रसाद के पास पहुंचा तो वे उसी समय पूजा से उठे थे। मुझे देखते ही मुस्कराकर बोले ''बहुत दिनों बाद आये हो लाला, बैठो कैसे आना हुआ?'' मैं बैठते हुए बोला, ''सेठ जी, आप बुरा नहीं मानेंगे तो कहूंगा...।'' उन्होंने तोंद पर हाथ फिराते हुए कहा, ''ऐसी क्या बात है भाई, कहो भी...।'' मैं खुशामदी लहजे में बोला, ''सेठ जी, आप बड़े धार्मिक व्यक्ति हैं, सबेर-शाम नित्य पूजा करते हैं, मैं जानना चाहता हूं आप पूजा क्यों करते हैं?'' सुनकर वे मुस्करा उठे और बोले, ''बस, इतनी-सी बात के लिए डर रहे थे।''

मैंने कहा ''डर लगता था...।''

''अर, इसमें डरने की क्या बात थी....।'' सेठ जी उपदेशक की मुद्रा में बोलने लगे, ''देखो भाई, मैं कर्म पर विश्वास करता हूं, आदमी जो करता है न, उसका फल उसे जरूर मिलता है, है न, सच बात?'' मैंने तपाक से कहा, ''सो तो है सेठ जी।'' मेरो सहमति से वे प्रसन्न हो गये, बोले, ''देखो मेर दिन-रात के कर्मों का फल, मेरो तिजोरो में बन्द है। मैं भगवान से सबेर-शाम प्रार्थना करता हूं कि हे भगवान, मुझे अधिक का लोभ नहीं, मरणोपरान्त मुझे मेर कर्मों का फल अवश्य देना।''

---

31. अपने लिए

पता नहीं दुलारो चाची को क्या हो गया है, जो सत्तू जैसे छोकरा के पीछे अपने को तबाह कर रही है। है तो सौतेला ही, पर उसकी हिमायत ऐसा करती है कि कोई अपने सगा बेटा का भी क्या करता होगा। और सत्तू है कि अपनी ही दुनिया में मस्त है। उसे तो जैसे दुलारो चाची को सताने में ही मजा आता है। कभी आवारागर्दी कर रहा है, तो कभी शराब पीकर बेहोश पड़ा है, तो कहीं किसी से मारपीट कर रहा है। बस दिन भर कहीं कुछ न कुछ उलटा-सीधा जरूर करगा और जाकर चाची लोगों के हाथ-पैर जोड़ेगी, विनती-चिरौरो करगी और सत्तू को मना-बुझाकर घर लायेगी।

समझ में नहीं आता आखिर चाची यह सब क्यों करती है! क्यों वह सत्तू के पीछे इतना जुल्म सहती है? घर के जायदाद में उसका बराबर का हक बनता है। वह चाहे तो हिस्सा लेकर अलग घर बसा सकती है। फिर इस अधेड़ उम्र में भी वह चाहे तो किसी के साथ रह सकती है। उसका स्वभाव और व्यवहार ही कुछ ऐसा है कि अनेकों लोग उसे अपनाने का आतुर हैं पर चाची अपने तई खामोश है। वह किसी को कोई अवसर ही नहीं देती और लोग निराश हो लौट जाते हैं।

लेकिन आज तो हद ही हो गई। सत्तू ने चाची पर हाथ उठा दिया था और चाची यह बर्दाश्त नहीं कर सकी थी। वह रोती हुई चिल्ला रही थी कि तेर बाप ने कभी मुझ पर हाथ नहीं उठाया। आज वह नहीं है तो तुम मुझे मारोगे! चाची की आवाज सुन सत्तू भीगी बिल्ली की तरह दुबक गया था। निश्चय ही चाची क हृदय को आज भारो आघात पहुंचा था वरना सब कुछ सहने के बाद भी उसके चेहर पर कभी शिकन तक नहीं आई थी।

मैंने कई बार चाची से पूछा था कि वह इस बेवकूफ छोकरा के पीछे अपने को क्यों बरबाद कर रही है पर चाची हमेशा हंसकर टाल जाती थी। पर आज सत्तू का अत्याचार सुनकर मन फिर व्याकुल हो गया है। मैं अपने को रोक नहीं पाता। आज चाची से इसकी वजह पूछकर ही रहूंगा। चाची अब भी गरम तवा की तरह छनछना रही थी। मैं जाते ही गुस्सा से भरकर बोला—''अब क्यों रोती हो चाची, कभी किसी का कहा तो नहीं माना,....अब भी बताओ चाची, तुम इस नालायक को क्यों इतना सर चढ़ा रखी हो?'' चाची एकदम क्रोधित होकर बोली, ''क्या पागल की तरह बकते हो, मैं क्यों इस नालायक के पीछे अपनी जान खपाऊंगी। मैं तो इसे अपने बुढ़ापा का सहारा समझती थी वरना क्यों इसके लिए इतना दुख सहती। मर तो मर, मेरा क्या ले जायेगा?'' टटती हुई चाची की आवाज सिसकियों में डूबती चली गई थी और मैं हतप्रभ-सा चाची को देखता रह गया था।

---

32. जब भगवान श्रीकृष्ण लाचार हो गये

महाभारत युद्ध को छत्तीस वर्ष बीत गये थे। उस वक्त चारों ओर आतंक और अशांति छाई हुई थी। लोग उच्छृंखल और उद्दंड हो गये थे। समुद्र की लहरं राजधानी द्वारका को निगलने को आतुर थीं। यदुवंशी दो दलों में विभक्त हो गये तथा उनमें आपस में खींचातानी मची हुई थी। द्वारका नगरो को समुद में समाते देख श्रीकृष्ण ने सभी यदुवंशियों को तीर्थाटन करने का आदेश दिया। फिर वहां प्रभास क्षेत्र में अनेकों प्रकार के बाजे बजने लगे तथा महान तेजस्वी यादवों का मद्यपान प्रारम्भ हुआ।

श्रीकृष्ण के पास ही कृतवर्मा सहित बलराम, सात्यिक, गद और बभ्रु पीने लगे। मद्य पीकर प्राय: समस्त यदुवंशी उन्मत्त हो गये और वे छत्तीस वर्ष पुराने महाभारत युद्ध का स्मरण करके एक दूसर का उपहास करने लगे कि ''तूने महाभारत युद्ध में सोते हुए अमुक व्यक्ति को क्यों मारा?'' दूसरा कहता, ''तूने अमुक व्रत में बैठे हुए व्यक्ति को क्यों मारा?'' इस तरह वे आपस में आरोप-प्रत्यारोप करते हुए झगड़ने लगे।

अंतत: सात्यिक ने श्रीकृष्ण के पास रखी हुई तलवार से कृतवर्मा को मार डाला और इसके बाद वह पागलों की तरह घूम-घूमकर दूसरों का भी वध करने लगा। श्रीकृष्ण बचाने दौड़ पर वे सफल नहीं हुए, विरोधी पक्ष (अधक वंश) के सभी लोग एकमत होकर शराब के जूठे बर्तनों से सात्यिक को मारने लगे। यह देख प्रद्युम्न कुपित होकर सात्यिक को बचाने के लिए झुण्ड में कूद पड़ा और इस तरह श्रीकृष्ण के दोनों बेट श्रीकृष्ण के सामने ही मार डाले गये। अपने पुत्रों का मारा जाना देखकर श्रीकृष्ण सब को मारने लगे। फिर परस्पर युद्ध छिड़ गया। श्रीकृष्ण अलग खड़े हो गये और सब यदुवंशी आपस में कटकर मर गये। भगवान श्रीकृष्ण लाचार हो देखते रह गये, सामने उनका कुल विनष्ट हो गया। सर्वशक्तिमान तथा सर्वगुण सम्पन्न माने जाने वाले भगवान श्रीकृष्ण नियति के सामने लाचारो से सब कुछ देखते रहे।

(गीतासार से संकलित)

33. जिज्ञासु

साधुओं को देखते ही मनबोध विचारों में खो गया। दिन भर का थका-हारा सूरज अपनी यात्रा समाप्त कर रहा था और पश्चिम में क्षितिज लालिमा से पुता हुआ जान पड़ता था। परन्तु आज डूबते सूरज की छटा देखना भूलकर मनबोध, हंसों की तरह धवल वस्त्रों में विचरते साधुओं को देख सोच में डूब गया। गांव का अल्हड़ युवक जो प्रकृति की गोद में हंसता-खेलता बड़ा हुआ था, प्रकृति की सुरम्य छटा को देखकर सोचा करता संसार कितना सुन्दर है। सुनहरा प्रभात, शीतल मोहक चांदनी रातें, ताजगी भरो जीवनदायिनी ठंडी हवायें क्या नहीं है इस दुनिया में। फिर इन सबका, संसार के ऐश्वर्य का उपभोग छोड़कर ये लोग साधु क्यों हो जाते हैं? बहुत विचार करने पर भी जब उसे संतुष्टि नहीं हुई तब वह साधुओं से ही पूछने का निश्चय करके उठ खड़ा हुआ। दूर नदी किनार आत्मचिन्तन में लीन बैठा साधु को देख वह चल पड़ा। निकट पहुंचकर बन्दगी किया और बैठ गया। साधु का चिन्तन टटा। वे मनबोध की ओर देखकर बोले, ''कहो क्या बात है?''

वह झिझकते हुए बोला, ''मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूं।''

''पूछो....।''

''आप साधु क्यों हो गये?''

''अपने ही स्वार्थ के लिए।''

''मैं समझा नहीं महाराज.....'' मनबोध अचम्भित था।

''मैं इस संसार के दुखों से छुटकारा चाहता हूं। इस जन्म-मरण के चक्कर से बचना चाहता हूं, क्या यह मेरा स्वार्थ नहीं है?''

''पर महाराज... ?''

''कहो... ?''

''क्या आपके घर में कोई नहीं था? मां-बाप, भाई-बहन, स्त्रो...।''

''सभी थे बालक।''

''तो क्या आपके घर में खाने को नहीं था?''

''वह भी भरपूर था।''

''तो क्या आपके सभी रिश्तेदार मर गये?''

''नहीं बालक।''

''फिर आपने, सबको कैसे छोड़ दिया, महाराज! क्या इन्हें छोड़कर जाते हुए आपको दुख नहीं हुआ?''

''अन्त में इन सबको छोड़ना ही पड़ेगा, यही सोचकर छोड़ दिया।''

''वह कैसे महाराज?''

''इस शरोर के छूट जाने पर क्या सब कुछ छूट नहीं जायेगा बालक?''

''छूट तो जायेगा।''

''जब छूट ही जायेगा, तब इस पर मोह करना, बुद्धिमानी तो नहीं है, न।''

''नहीं महाराज, लेकिन इस संसार और समाज के प्रति आपका कोई उत्तरदायित्व नहीं है, महाराज।''

''है बालक।''

''फिर आप अपनी जिम्मेदारो से मुख मोड़कर क्यों भाग रहे हैं?''

''भाग कहां रहा हूं, बालक। तब मेरा परिवार सीमित था अब सारा संसार ही मेरा परिवार है।''

''आप कौन हैं महाराज?''

''जो तुम हो बालक।''

''आप तो साधु हैं।''

''तुम भी साधु हो सकते हो।'' साधु मुस्कराया।

''जब सबको मरकर एक दिन मिट्टी में मिल ही जाना है तब साधु या गृहस्थ होने से फायदा, महाराज!''

''यह तुम्हारा बहम है, बालक। तुम कभी नहीं मर सकते, आत्मा कभी नहीं मर सकती। तुम्हारा स्वरूप आनन्दमय, अजर, अमर, अविनाशी है। अपने आपको पहचानो। मृत्यु इस शरीर की होती है, शरीर निवासी आत्मा अथवा परमात्मा की नहीं।''

''इसका प्रमाण महाराज!''

''पुनर्जन्म, जीव बार-बार अपने कर्मवश शरीर धारण करता और छोड़ता है। यही कारण है कि कोई दुखी, कोई सुखी, कोई अमीर तो कोई गरीब है। जीवन की असमानता अपने प्रारब्ध और पुरुषार्थ का फल है। अन्यथा सभी समान होते। यह जगत झूठा और इसका सम्बन्ध स्वप्नवत है, इस जानने का प्रयत्न करो।''

''यह जगत तो प्रयत्क्ष है, फिर झूठा कैसे हुआ महाराज?''

''यह जगत अपने आप में सत्य होते हुए भी हमार लिए मिथ्या है बालक। क्या पलक झपकते ही इससे हमारा सम्बन्ध टट नहीं जाता?''

''टट जाता है महाराज, पर इस जगत को बनाने वाला कोई तो होगा?''

''फिर इस जगतकर्ता का बनाने वाला कहां से लाआगे बालक!''

''वह तो सर्वगुण संपन्न, सर्वशक्तिमान है महाराज, अपने आप बन गया।''

''पर वह कहां है! सर्वशक्तिमान होते हुए भी क्यों छुपा बैठा है?''

''वह सब जगह विद्यमान है महाराज।''

''क्या चोर, अत्याचारी, हत्यारा, कसाई के दिल में भी?''

''होना चाहिए महाराज।''

''यह भी तुम्हारा बहम है बालक, विचार करो, सर्वशक्तिमान के रहते संसार में इतनी असमानता क्यों रहती? लोग चोरी, डकैती, निरीह प्राणियों की हत्या, अबलाओं से बलात्कार नहीं कर पाते। मन्दिरों में चोरियां नहीं होतीं। धर्म के नाम पर लोग लूटते नहीं। जो नहीं है उसे हठपूर्वक स्थापित करने की कुचेष्टा बुद्धिमानी नहीं है। बिना भोगे कर्मों का क्षय नहीं होगा, अत: अपने को सुधारने की चेष्टा करो। जब तक सांस है इस संसार में तटस्थ रहकर निर्लिप्त भाव से साधु की तरह व्यवहार चलाओ, तुम्हें शांति मिलेगी।''

''आप मुझे साधु होने को तो नहीं कह रहे हैं, महाराज?''

''क्या तुम मेर कहने से साधु हो जाओगे!'' साधु फिर मुस्कराया।

''नहीं महाराज।'' मनबोध झेंप गया।

''क्यों?''

''सभी साधु हो जायेंगे तो इस दुनिया का क्या होगा महाराज, यह सृष्टि कैसे चलेगी?''

''लगता है यह सृष्टि तुम्हार भरोसे चल रही है और भविष्य में भी तुम्हार भरोसे ही चलने वाली है।'' साधु अपनी हंसी नहीं रोक सके।

''मैंने ऐसा तो नहीं कहा महाराज।''

''नहीं तो तुम अपनी चिन्ता करो। यह संसार हमार और तुम्हार बगैर रसातल को जाने वाला नहीं है, और सभी साधु हो जायेंगे तो भी इस दुनिया का भला ही होगा। साधु मितव्ययी, ब्रह्मचारी और सदाचारी होते हैं। जनसंख्या वृद्धि से सरकार वैसे ही परशान है। दुनिया भर में गरीबी और भुखमरी व्याप्त है। चारों ओर लूटमार और व्यभिचार फैला हुआ है। सभी साधु हो जायेंगे तो दुनिया में सद्भावना और शांति की स्थापना होगी, दुनिया पलटगी नहीं।''

''धृष्टता के लिए क्षमा कर महाराज।'' उसने झुककर साधु को प्रणाम किया।

''तुमने कोई धृष्टता नहीं किया बालक...।'' उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए साधु ने आशीर्वाद दिया ''खुश रहो और अपने आप को पहचानने की काशिश करो...अंधेरा काफी हो गया है, अब जाओ।''

चारों ओर गहन अंधकार फैला हुआ था। परन्तु मनबोध को लग रहा था कि उसके अन्दर कहीं प्रकाश फूट रहा है। उसकी मान्यताओं की दीवार ढहती जा रही थीं। ''फिर आऊंगा, महाराज।'' उसने उठते हुए कहा। उसका स्वर भीगा हुआ था आनन्द से, पश्चाताप से, अथवा उस साधु के स्नेहिल स्पर्श से—यह हम नहीं जानते।

34. उन्हें मत सराहो

उस झोपड़ीनुमा मकान के बाहर धर्म मंदिर का बोर्ड लगा हुआ था। मकान के भीतर बैठे चार धार्मिक लोग आपस में मंत्रणा कर रहे थे। बाहर रात का अंधेरा छाया हुआ था और भीतर में ढिबरो की लौ थरथरा रही थी। ढिबरो में मिट्टी तेल की जगह डीजल जल रहा था। इस भौतिक क्रांति के युग में ढिबरो का जलना वह भी घासलेट की जगह डीजल से निश्चय ही सादगी और मितव्ययिता का द्योतक था। इस बात से हमें कोई सरोकार नहीं कि डीजल कहां से प्राप्त हुआ था क्योंकि सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं का कार्य इसी तरह दान-दक्षिणा के सहार ही चलता है। सामने दीवाल पर लिखी सूक्ति ''उन्हें मत सराहो जिन्होंने अनीति पूर्वक धन कमाया है।'' ढिबरो की लौ के कारण धुंधला जाती थी।

चारों व्यक्तियों के चेहर पर भारो जिम्मेदारो का बोझ लदा हुआ था। लोग मुंह लटकाये खामोशी से एक-दूसर को ताक रहे थे। आखिर सबसे अधिक वय का व्यक्ति चुप्पी तोड़ते हुए बोला, ''आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि यह कार्य किसी एक व्यक्ति के वश का नहीं है और गुरुजी का आदेश है कि 'मंदिर' दो वर्ष में किसी भी स्थिति में बन जाना है। पचास हजार रुपये एकत्र करना आसान काम नहीं है, अत: आप लोग अपनी राय दें कि किस तरह इस पुनीत कार्य को पूर्ण किया जाये।''

फिर कुछ देर खामोशी छाई रही। ढिबरो की लौ हिल रही थी और बेतहासा धुवां का अंबार उठ रहा था। चारों व्यक्ति विचार शून्य-से बैठे थे। बहुत देर सोचने के बाद एक व्यक्ति जो खादी का कुर्ता और धोती पहन रखा था, बोला—''भाई साहब, आप जानते ही हैं कि हमार पास तो धन है नहीं, हां, तन और मन से सेवा करने को मैं हमेशा तत्पर हूं और इसे मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूं। अत: आप ही लोग कुछ सुझायें....।'' पहले व्यक्ति की हां में हां मिलाते हुए दूसरा बोला, ''हां भाई, जो आपकी दशा है वह हमारो भी है। समझ में नहीं आ रहा कि यह कार्य कैसे पूर्ण होगा।'' अब तीसर व्यक्ति की बारो थी, ''भाइयो! मेर मन में एक विचार आया है यदि आप लोगों को जंच जाये तो ठीक है अन्यथा जाने दें—आज भ्रष्टाचार अपनी चरमसीमा पर है विशेषतौर से सरकारो संस्थाओं में, क्यों न हम उन्हें पुण्य कमाने का अवसर दें। भ्रष्टाचार तो वे कर ही रहे हैं, और भविष्य में भी वे करंगे ही। अत: उनका कुछ धन इस पुनीत कार्य में लग जाये तो उनका उद्धार भी हो जायेगा और मंदिर भी बन जायेगा। फिर हम कोई अपने लिए थोड़े ही मांग रहे हैं...।'' सुनकर चौथे व्यक्ति—जो शायद इस संस्था के प्रमुख कार्यकर्ता थे—के चेहर पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई, बोले, ''वाह भाई, आपने तो मेर मुंह की बात छीन ली। हम लोग चार कार्यकर्ता हैं, क्यों न एक-एक विभाग बांट लें। पहला लोकनिर्माण विभाग को ले लें, दूसरा सिंचाई विभाग, तीसरा वन विभाग, चौथा राजस्व विभाग और पुलिस विभाग को और कल से ही अपने अभियान में जुट जायें.....।''

सब ने हां में हां मिलाया। सबके चेहर पर लदा भारो बोझ का एहसास एकदम गायब हो गया था, पर तभी चौथे व्यक्ति की निगाह भीतर दीवार पर लिखी सूक्ति पर चली गयी। उसे लगा कि उस सूक्ति की लिखावट कुछ धुंधला-सी गई है। उसने ब-मुश्किल पढ़ा ''उन्हें मत सराहो जिन्होंने अनीतिपूर्वक धन कमाया है।'' वह बेचैन होकर बोला, ''भाइयो, मेर विचार से इस सूक्ति को बाहर लिखवा देना चाहिए, भीतर में इसकी कोई आवश्यकता नहीं, हम लोग तो जान ही गये हैं। अब हम पर इसका कोई असर भी नहीं होता। बाहर लोग पढ़ेंगे तो शायद उनका सुधार हो।'' सबने एक दूसर की तरफ देखा और मौन स्वीकृति दे दी। वह सूक्ति दूसर ही दिन मंदिर के सामन लिख दी गई। आपको यह जानकर शायद आश्चर्य हो कि सचमुच दो साल के भीतर मंदिर की भव्य इमारत बनकर तैयार हो गयी और उस भवन में सामने दीवाल पर सुन्दर अक्षरों में वह सूक्ति लिखी है ''उन्हें मत सराहो जिन्होंने अनीतिपूर्वक धन कमाया है।''

35. पुण्य खरोदिये

ज्यों-ज्यों पाप प्रच्छालन के दिन निकट आ रहे थे आनंद स्वामी एक अव्यक्त आतंक से ग्रस्त होता जा रहा था। उसका व्यवहार अस्वाभाविक और असंयत होने लगा था। फिर एक दिन जब डाकिया ने पत्र दिया तो लिफाफा देखते ही वह समझ गया कि पाप प्रच्छालन हेतु उसे बुलाया गया है। उसका मन बेचैनी और व्यग्रता से भर उठा। ललाट पर प्रस्वेद की बूंदें झिलमिलाने लगीं और धीर-धीर

वह अतीत में डूबता चला गया....बंगाल के उस भूखण्ड में जहां गुरु का आश्रम बना है एक अजीब रोमांचकारो संगीत ध्वनि के मध्य पाप प्रच्छालन का कार्य चल रहा है। गुरु एक निश्चित दूरो पर कड़ी सुरक्षा व्यवस्था के तहत भव्य आसन में विराजमान हैं। लोग समूहों में जाते हैं। गुरु उनके अत्यंत गुप्त दोषों को उद्घाटित करते हैं और प्रत्येक दोष के साथ 'सड़ाक' से कोड़ा बदन पर लोटने लगता है। लोग पीड़ा से तिलमिलाकर सिसकारो भरते हैं और गुरु को दंडवत करके अपने को धन्य मानते हैं।

कुछ लोग गेरुवा वस्त्र पहने नरमुण्ड लिये तांडव नृत्य कर रहे थे। पाप प्रच्छालन का कार्य अविराम गति से चल रहा था। लोग कोड़े खाकर निकलते जाते थे और उसका मन एक विचित्र वितृष्णा से भरता चला गया था। दूसरों पर बरसते कोड़े के साथ-साथ वह भीतर से तड़पा और टटा था। उसका विद्रोही मन अन्दर ही अन्दर सुलगता जा रहा था और हर कोड़े की मार के साथ उसके भोतर कोई चीत्कार कर उठा था—''नहीं, नहीं, यह गलत है। कोड़े मारने से ही किसी का किया हुआ पाप भला कैसे कट जायेगा.... ?'' सम्पूर्ण वातावरण एक अजीब सिहरन से भरा हुआ था। वह बदहवास-सा सब कुछ देखता रहा, फिर उसकी बारो आयी थी और कोड़ा सांप की जीभ की तरह लपलपाकर ऊपर उठा था तब वह भयाक्रांत हो जोर से चीख उठा—''नहीं...।'' चीख की आवाज सुनकर उसकी पत्नो भीतर से दौड़कर आ गई और आनंद स्वामी वर्तमान में लौट आया। उसका चेहरा भय, क्रोध और घृणा से लदा विवर्ण हो रहा था। ''क्या बात है ?'' उसकी हालत देख पत्नो घबराकर बाली। ''कुछ नहीं।'' वह ललाट पर उभर पसीने को पोंछता रहा। सामने मेज पर लिफाफा पड़ा था।

उसके अन्तर में अनिश्चय और शंकाओं का तूफान घुमड़ रहा था। बदन में पसीने की अनगिनत धाराएं रंग रही थीं। वह उठा और रामदास के पास पहुंच गया। रामदास उस वक्त मेज पर नक्शा फैलाये कुछ देख रहा था। रामदास तार्किक बुद्धि का धनी और स्पष्ट वक्ता है। आनंद स्वामी ने जाते ही पूछा, ''दादा, क्या आप जानते हैं कि हमार गुरु अंतर्यामी तथा सर्वसमर्थ हैं....।'' रामदास निर्णायक स्वर में बोला ''यह बकवास है। यदि कोई व्यक्ति अपने को अंतर्यामी तथा सर्वसमर्थ साबित करने की चेष्टा करता है तो वह अव्वल दर्जे का ढोंगी है।

''नहीं दादा, आप नहीं जानते, वे ऐसे ही है।'' ''अच्छा!'' रामदास उसकी नादानी पर मुस्कराया। ''सामने जाते ही वे उस व्यक्ति के काले कर्मों को दर्पण की तरह सामने रख दते हैं और कृपा करके अपने शिष्यों का आधा पाप अपने ऊपर लेकर शिष्यों को मुक्त कर देते हैं।''

''वह कैसे.... ?'' रामदास हंसने लगा।

''हर बुर कर्मों के लिए कोड़े मार जाते हैं और मार पड़ते ही शिष्य का आधा पाप गुरु स्वयं ले लेता है। इसी तरह अनीतिपूर्वक अर्जित धन का आधा हिस्सा गुरु को चढ़ाकर उस पाप से भी शिष्य मुक्त हो जाता है। इस तरह हमार सार पापों को गुरु पुण्य में बदल देता है।''

''क्या यह तुम्हारो दृढ़ मान्यता है ?'' रामदास गंभीर हो गया। ''हां....।'' उसके भीतर हलचल मची थी, सोच रहा था 'काश' रामदास उसकी मान्यता के अनुरूप निर्णय देता। रामदास एकदम गंभीर होकर बोला, ''आनंद स्वामी, यह तुम्हारा भ्रम है। कर्मों का फल बिना भोगे नहीं छूटता। यह कारण-कार्य व्यवस्था के प्रतिकूल है। गुरु को पापहर्ता बनाकर अन्धाधुन्ध करते मत जाआ तुम्हें उसका परिणाम भोगना ही पड़ेगा।'' ''नहीं....नहीं.....ऐसा नहीं हो सकता....।'' आनन्द स्वामी बदहवास-सा बुदबुदाने लगा—''प्रच्छालन हेतु किये कर्मों के पाप का बोझ मैं कैसे सह सकूंगा....नहीं, हमार गुरु सर्वसमर्थ, अंतर्यामी और पापहर्ता हैं...दादा तुम गलत कह रहे हो...।'' अपनी आस्था के विपरोत निर्णय सुन उस पर मूर्छा छाने लगी। उसका सारा बदन पसीने से भीग गया। वह मेज पर सिर रखकर हांफने लगा जैसे बहुत दूर से थका-हारा चलकर आ रहा हो।

---

36. सस्ता नुस्खा

बाहर रात का अंधेरा छाया हुआ था। भीतर कमर में ब्रह्मचारो मायाशरण पलंग पर लेट हुए आराम कर रहे थे। उसके मन में भारो उथल-पुथल मची हुई थी। वे बार-बार करवट बदलते, उठकर थोड़ी देर कमर में टहलते और पुनः बिस्तर पर लेट जाते थे। बिस्तर पर माया

का वह अंक खुला हुआ था जिसमें भगवान के आश्रम का मायावी दृश्य चित्रित था और हमार ब्रह्मचारो मायाशरण का मन डांवाडोल हो रहा था।

वे बिस्तर पर से उठकर बैठ गये। लोटा से गिलास में थोड़ा पानी डाला, कुल्ला करके गला साफ किया और गटागट एक गिलास पानी पी गये। लेकिन मन फिर भी चंचल घोड़े की तरह बिदक रहा था। उन्होंने पत्रिका हाथ में उठा ली और तस्वीर को गौर से देखने लगे। तस्वीर में एकदम निर्वस्त्र स्त्री-पुरुष हिप्पियों की तरह नृत्य कर रहे थे। वहां कोई बन्धन नहीं था। लोग जिनमें विदेशी चेहर ही अधिक थे उन्मुक्त होकर प्रेममय क्रियाकलापों में लीन थे। यह भगवान के साधना कक्ष का एक दृश्य था जिसे किसी फोटोग्राफर ने साधुवेश में जाकर चोरो से खींचा था या जानबूझकर ऐसा कहा गया था, कहना कठिन है। जो भी हो वह दृश्य ब्रह्मचारो मायाशरण का—जो कभी रामशरण था, मन हर लिया था। वे चित्र को देखते-देखते उसी में डूब गये और अपने ही कमर में बैठे हुए भगवान के आश्रम के साधना कक्ष में पहुंच गये और खुद भी साधना में लीन हो गये। जब तस्वीर मात्र को देखकर पांच वर्ष का साधक पतनोन्मुख हो गया तब उस साधनाकक्ष के साधकों की क्या दशा होगी भगवान ही जाने.....।

कुछ क्षण पश्चात एकाएक उनके हाथ से पत्रिका छिटककर दूर जा गिरो और वे हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। सशंकित नेत्रों से चारों ओर देखा जैसे कुछ गलत करके छिपाना चाहते हों। विकारग्रस्त मन जीव को कैसे नट की तरह नचाता है। वे फिर कमर में टहलने लगे और मन फिर चंचल हो उठा। वे सोचने लगे—पांच वर्ष की साधना में वह इस तरह कभी उत्तप्त नहीं हुआ था। दृढ़ता से मन को बांधे रहा और शांत सौम्य जीवन जीता रहा, लेकिन संभोग से ही मोक्ष प्राप्त कर लने की कल्पना मात्र से वह रोमांचित हो उठा और उसका मन उद्वेलित हो गया। सस्ता नुस्खा भला किसे पसन्द नहीं आयेगा।

---

37. वापसी

जीवन से थके-हार, दुखो चेतक के मन में अचानक एक नई युक्ति सूझी। जीवन को बिलकुल नये ढंग से जीने का वह लालायित हो उठा। चार-पांच वर्षों के व्यथित गृहस्थ जीवन की कटु स्मृति उसके मन में निधि की तरह संचित थी। आषाढ़ का बसेरा चल रहा था। उस दिन आकाश पर कहीं-कहीं काले-सफेद बादल हलके नीले परदे पर उपेक्षा से डाले गये धब्बे की तरह छितर पड़े थे।

गुरु जी मुमुक्षुओं के मोह भंग करने पर तुले हुए थे। वे इन्द्रिय रहित, अजर-अमर आत्मा के सुख-दुख मुक्त स्थिति का निरूपण एक दृष्टांत द्वारा कर रहे थे। चेतक वहां पहुंचा तो उसके हृदय के किसी अगोचर कोने को शान्ति मिली। उसने महसूस किया कि नि:संदेह अब तक वह गलत लोगों में भटक गया था। साहिब का मुखमंडल एक अपूर्व तेज और खुशी से चमक रहा था मानो वे इन मूढ़ जीवों के अज्ञान का पर्दा हटाकर अपने आपको धन्य कर रहे हों।

दृष्टांत बड़ा रोचक था—''एक बूढ़ा व्यक्ति था। सौभाग्य या दुर्भाग्य से उसके आंख और कान दोनों ही न थे। संयोगवश एक बार उसके पुत्र को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, तो घर में खूब खुशियां मनाई गयीं। बूढ़ा निर्द्वन्द्व, निरपेक्ष बना रहा क्योंकि न तो वह देख सकता था और न ही सुन सकता था। पुन: कुछ दिन पश्चात उसके पौत्र को यम ने आलिंगन बद्ध कर लिया तो घर में कुहराम मच गया फिर भी वह बूढ़ा तटस्थ बना रहा....।'' चेतक दत्त-चित्त होकर सुन रहा था और उपदेशक तन्मय होकर दृष्टांत का सिद्धान्त बता रहे थे।.......जब दो ही इन्द्रिय आंख और कान के न होने से उस वृद्ध को पौत्र क जन्म-मरण का न शोक हुआ न हर्ष, तब सभी कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों से रहित, निर्विकार आत्मा को सुख-दुख कैसे व्यापेगा?''

जब उपदेश समाप्त हुआ तो सज्जन-वृंद साहेब बंदगी बनाकर जाने लगे और धीर-धीर वह स्थल जनशून्य होने लगा। चेतक अब भी शांत भाव लिए गंभीर मुद्रा में बैठा था। उसके हृदय में अंतर्द्वन्द्व मचा हुआ था। उसे बेहद पछतावा हो रहा था। वह घोर निराशा और क्षोभ से जल रहा था कि अब तक का जीवन व्यर्थ ही बीत गया। न जाने कब तक वह इन्हीं विचारों में डूबा तड़पता रहता; साहेब ने आवाज दी तो उसको तंद्रा टटो ''पास आ जाइये, अकेले दूर क्यों बैठे हैं?'' चेतक समीप आ बैठा। व्यर्थता के कई क्षण तेजी से सरक गये। वह सोच-सागर में डूबा निश्चय और अनिश्चय के घेर में भटकता रहा। अनिश्चय का तूफान धीर-धीर दूर हट गया और उसके भाव पर निश्चयात्मक भाव की लकीरें उभर आयीं। उस पर आत्म-समर्पण की भावना हावी हो गयी। वह तड़पकर टटा और गुरु के चरणों में गिर पड़ा। उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया था। उसे संसार से वितृष्णा हो चली थी। उसका मोह भंग हो गया था। गुरु ने उसकी प्रार्थना सुन ली। उसे उठाकर शुभाशीष दिया और चेतक उस दिन से गुरु का शिष्य बन गया। वह तो पहले ही अपने जीवन से उदास था। अब उसे मानो डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। वह मार खुशी के गद्‌गद हो गया और उसकी आंखों से खुशी के आंसू छलकने लगे।

चेतक भक्त-भोगी जीव था। उसने जवानी की कसरतें की थीं। जिदगी को भोगा था और संसार की रगरलियों को चखा था। यह और बात है कि वक्त ने उसके साथ इंसाफ नहीं किया था। उसकी आशाओं को छिन्न-भिन्न करके उसे पश्चाताप और ग्लानि के गहर गर्त में

पटक दिया था। उसका चुनाव भगवान की आंखों में भी खटका था, तभी तो उसने उसकी दोनों ही सुन्दर बीवी को झपट लिया था। इतना ही नहीं उसके प्रिय लल्ला को भी कलमुहा ने चेतक से छीन लिया, तब से वह खोया-खोया-सा उदास रहा करता। हमेशा उसके मन में दुख के काले बादल छाये रहते जो अविरत रिस-रिस कर बरसा करते थे, और वह चाहते हुए भी इसका प्रतिकार नहीं कर सकता था। उसकी जिदगी की गाड़ी धीर-धीर खामोश चल रही थी। तभी उसके गांव में एक दिन कुछ साधुओं ने पदार्पण किया और वह धोखे से भटक गया तो अपना तन-मन सभी खोकर वापस लौटा था।

जब साधुगण गांव छोड़कर जाने लगे तो चेतक भी उनके संग जा रहा था। तीस-बत्तीस वर्ष के अधेड़ चेतक के मन में जाते वक्त एक ललक थी, उत्साह था, भावी जीवन को साधु रूप में व्यतीत करने की उत्कट इच्छा से वह आह्लादित था। उसके सिर पर अतीत का बोझ नहीं था और भविष्य, यह उसे छल रहा था जिसका एहसास चेतक को नहीं था। भविष्य की हर सुखद कल्पनाएं उसे चुम्बकीय धातु की तरह आकर्षित कर रही थी आर वह चुपचाप उस ओर विवश-सा खिंचता जा रहा था।

डेढ़-दो वर्ष उसने खूब अनुभव बटोर। भले-बुर सब तरह के लोगों से वह मिला-जुला। बहुतेर धन और यश के लोलुप थे पर चेतक हर बुराइयों से अपने को बचाया। मन, आत्मा के विरुद्ध कीचड़ उछालता पर वह हमेशा उसे धीरज से छुड़ा देता। हर पीड़ादायक क्षणों में वह मुस्कराता रहा। उसने अनेक यातनाएं सही पर धैर्य ने कभी साथ नहीं छोड़ा। कष्टों से उसने जीवन को तराशा और यातनाओं को अपने ही जीवन का प्रतिफल समझकर स्वीकारा था।

उसके त्याग, तपस्या और बलिदान ने शीघ्र ही उसे सबका प्रिय बना दिया था, तिस पर गुरु की अनुकम्पा थी। अब भी यदि वह सुखद जिदगी न बिताये तो अभागा का औलाद ही तो है। भाग्य की विडम्बना बड़ी विकट है। जिंदगी के कांटक्टर की तरह आनंद की खोज में हम अनेक योजनाएं बनाते हैं पर दुर्भाग्य का एक ही थपेड़ा ताक में लगे दुश्मन की तरह कमर तोड़ कर चला जाता है। यह सब जानते हुए भी मूर्ख जीव चेतक की तरह अनजाना है। चेतक को उसका अंतिम आश्रय भी छल गया। उसकी भाग्य रखा टढ़ी थी। वह रोगग्रस्त हो गया। गठिया बात का पुराना मरोज था वह, यही वजह है कि सर्दियों में वह बहुधा परशान रहता। प्रवासी चेतक से इस बार जब उसकी मुलाकात हुई तो उसने आड़े हाथ लिया और बेचारा चेतक लुढ़का तो बस, लुढ़कता ही चला गया। साधुओं ने जी-जान से उसकी सेवा की। दक्षिणा का बहुत बड़ा अंश उपचार में लग गया जो उनके भोजन-छाजन के निमित्त होता था।

चेतक अन्य साधु-बन्धुओं की सेवा-सुश्रुषा देखकर गदगद हो जाता। उसके कंठ अवरुद्ध हो जाते। वह उनसे विनय के स्वर में कहता–''भाई, मुझे सर्दियों में अक्सर ऐसा ही हो जाता है, धीर-धीर यह अपने आप शांत हो जायेगा।'' पर वे उसकी एक न सुनते, सेवा-टहल में रच भर भी कमी न होती थी।

बैसाख की एक उमस भरो शाम। गुरु बैठे उपदेश कर रहे थे। शारोरिक व्याधि से मुक्त चेतक शांत बैठा था। पर उसमें मानसिक हरारत अवश्य थी। न जाने आज वह क्यों अनमना-सा बैठा था; तरह-तरह की कल्पनाएं उसके मन में उभर रही थीं। मानसिक तनाव के कारण उसके माथे पर प्रस्वेद की बूंदें झिलमिला रही थीं। प्रथम दिन की तरह उपदेशक आज भी एक दृष्टांत का सहारा लेकर एक ही स्थान पर वैरागी-जन के ठहराव से उत्पन्न बुराई पर प्रभाव डाल रहे थे, जिस तरह नदी का पानी एक ही स्थान पर पड़ा रहकर दूषित हो जाता है।

''एक साधु बहुत काल देश-विदेश भ्रमण करने के पश्चात एक पर्ण कुटोर पर रहने लगा। चूहों के उत्पात से हारकर उनके विनाश के लिए उसने बिल्ली पाली, अब उसे बिल्ली की भरण-पोषण के लिए दूध की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति उसने गाय द्वारा की। गाय की देखभाल की आवश्यकता ने उसे नौकरानी रखने पर विवश कर दिया। कुछ दिनों पश्चात वह नौकरानी रानी बन गई और वह साधु राजा बनकर गृहस्थी रूपी राज्य चलाने लगा।''

उपदेश खत्म हुआ! सज्जन वृन्द चलने लगे। गुरु ने चेतक को पुकारा और वह समीप आ बैठा। उसने झुककर तीन बार साहब बन्दगी की, फिर गुरु-आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा।

''चेतक.....'' गुरु प्रत्युत्तर में बोले।

''जी....।''

''तबियत तो ठीक है न''।

''जी, आपकी कृपा है, बिलकुल ठीक हूं।''

''मेर ख्याल से तुम्हारा प्रवासी बनना ठीक नहीं है, चेतक, घर जाकर स्वास्थ्य लाभ करो। यहां इधर-उधर भटकते रहने से अस्वस्थ होने की ही संभावना अधिक है।'' गुरु उसके चेहर पर उतरते-चढ़ते भावों को देखने का यत्न करने लगे पर वे तो सांझ के धुंधलके में सुरक्षित थे।

चेतक को गुरु का यह आदेश साल गया। वह भय मिश्रित स्वर में गिडगिड़ाया–''जी, लेकिन अभी-अभी आप जो दृष्टांत.....।''

''उसकी बात छोड़ो.....हमारो सलाह मानो और घर जाओ....।'' चेतक विकल हो गया। उसका धैर्य तूफान ग्रस्त वृक्ष की तरह

हरहराकर टट गया। हृदय हाहाकार करने लगा। वह विगलित स्वर में अनुनय-विनय करन लगा, ''मुझे अलग न कीजिए गुरुदेव! मैं आपके चरणों में ही रहना चाहता हूं। आपसे दूर होते ही मेर पैर लड़खड़ा जायेंगे, मैं गिर जाऊंगा.....।''

''मुझे दुख है, चेतक, तुम मेर प्रिय शिष्य हो। तुम्हें वापस भेजते मेर अन्तर में पीड़ा हो रही है। लगता है तुम्हें स्वर्ग से जबरन नरक में ढकेल रहा हूं। पर मैं विवश हूं, लाचार, हूं, चेतक! तुम्हें विश्रांति की आवश्यकता है और तुम्हार स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए मझे यही करना पड़ेगा। हमारो सलाह मानो और स्वदेश लौट जाओ। हा, एक बात का ध्यान अवश्य रखना—''कीचड़ के कमल की तरह तुम संसार में रहकर भी उससे भिन्न रह सकते हो। जिस गृहस्थी को छोड़ आये हो उसी में पुनः लिप्त न होना, इसी में जीवन की सार्थकता है, बस....''

चेतक अधीर हो उठा। उसकी आंखें छलछला गईं। वह बोझिल मन से गुरु को नमस्कार करके उठ गया। उसका अपना सर्वस्व लुटता नजर आ रहा था। उसे अपनी इज्जत के चीथड़े उड़ते दिखाई दे रहे थे। उसे घर वापस जाने की कतई इच्छा नहीं थी। उसकी चेतना अकड़-अकड़कर टटती जा रही थी और वह अपने को असहाय महसूस कर रहा था।

दूसर दिन जब वापसी के लिए चेतक रवाना हुआ तो उसके बायें बगल में गोल घिरो कम्बल और चादर थी और दाहिने हाथ में लोटा था। संन्यास का सुख हाथ में रखे ईथर की तरह गायब हो गये थे। वह साधु-बन्धुओं और गुरु से दुखद विदाई लेकर चल पड़ा।

कुछ ही दिन पश्चात, चेतक गहस्थी की हर जरूरतें महसूस करने लगा। गृहस्थी अपने आप में एक बहुत बड़ा छलावा है और बेचारा चेतक उसमें बुरो तरह उलझ गया। समय को करवट बदलते देर न लगी, फिर लोगों ने आंख मलकर देखा कि उसके सूने घर को एक परिणीता रोज ही सजातो, संवारती है। लोगों ने युगद्रष्टा की भांति इसे घिनौना कृत्य करार दिया। भक्तों ने होठ सिकोड़कर मुस्कुराहट बिखेर दीं। वृद्ध अनुभवी लोगों ने अपने अनुभव बखाने, ''भइ, अपन तो पहले ही कहते थे कि.....।'' और मुझे लगता है कि इसकी अंतिम परिणति यही हो सकतो थी जो मेर समक्ष है।

---

38. राक्षस

सिहावा नगरो के जंगलों में यदि आपको झूलन टटका मिल जाये तो आप क्या करंगे, यह तो आप ही जानिये, परन्तु जब मुझे वह मिला था तब मैं उसके सम्बन्ध में पूरो तरह अनभिज्ञ था। वह फरवरो की एक खुशगवार सुबह थी। मैं सोन्दूर जलाशय की नगरो उपशाखा के एक सी० डी० वर्क्स का सर्वे करने जा रहा था। प्रातःकाल की चमकीली धूप का मानो पूरा साल-वन आनन्द ले रहा था। वातावरण में हलकी ठंढकता शेष थी। उस वक्त जंगल बेहद शांत और मोहक लग रहा था। मैं जंगल के बीचोंबोच जाती घुमावदार पगडंडी से जा रहा था तभी सामने बीच पगडंडी पर चमकदार पीले-हर रग के एक बड़े आकार के गिरगिट को देखकर ठिठक गया। मैं उसके असामान्य आकार को देखकर अचंभित था। वह मेरो ओर देखकर ऊपर-नीचे होने लगा। जैसे कोई पहलवान दंड पेल रहा हो। मुझे लगा कि वह शायद छलांग लगाकर मुझ पर चढ़ जायेगा। मैं सिहर कर पीछे हट गया और सावधानी से हटकर आगे चला गया। कुछ देर तक वह गिरगिट मस्तिष्क में झूलता रहा, परन्तु अपने गन्तव्य तक पहुंचते-पहुंचते मैं उसे भूल गया।

मजदूरों के पहुंचने पर मैं डम्पी लेबल सेट करने लगा, तभी एक ने पूछा, ''आप किस रास्ते से आये हैं?'' मैंने बता दिया कि जंगल के बीच वाली पगडंडी से। सुनकर उसने कहा, ''हम लोग भी उसी रास्ते से आये हैं, तब क्या आपको रास्ते में झूलन-टटका नहीं मिला?'' मेर मस्तिष्क में एकाएक फिर वह गिरगिट झूलने लगा। मैंने कहा, ''बीच रास्ते में एक गिरगिट मिला था। वह भयानक आकार का था, उसी को तो नहीं कह रहे हो?''

''हां, हां....हरा रग का था, बड़ा-सा....।'' वह तुरन्त बोला।

''हां, देखा है, लेकिन क्यों?'' मैंने आश्चर्य से पूछा।

''तब आपने उसे मारा क्यों नहीं?''

उसकी बात सुन मुझे हंसी आ गई, मैंने कहा, ''भला क्यों?'' उसने गम्भीर होकर कहा, ''झूलन टटका का मिलना आदमी के लिए अशुभ माना जाता है। उसे देखने वाला आदमी उसी की तरह झूल-झूलकर मर जाता है। इसीलिए उसे देखते ही मारकर मिट्टी दे दिया जाता है, फिर नहा-धोकर ही घर में जाते हैं।'' उसने उसी गम्भीरता से कहा, ''साब, आपको भी उसी तरह से झूल-झूलकर मरना पड़ेगा....।''

मैंने हंसते हुए कहा, ''लेकिन उसे अशुभ क्यों मानते हैं?'' मेर मन के अविश्वास को उसने ताड़ लिया, बोला, ''साब, आप विश्वास नहीं करते, हमार गांव के सयाने लोग बताते हैं कि वह पिछले जन्म का राक्षस है, इसीलिए उसे मार देते हैं।'' मैंने माथा पीट लिया, सोचा,

लोग कैसे-कैसे अन्धविश्वासों को अपने सीने से लगाये जी रहे हैं। ''तो क्या तुम लोगों ने उसे मार दिया?'' वह झूलन टटका (गिरगिट) फिर मेरो आंखों के सामने झूल गया।

उसने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ''हां....।'' मैं सोचने लगा—कौन, किसके लिए अशुभ है और मुंह से अचानक गाली निकल गई, ''साला... राक्षस....।'' मैंने कहा ''वह पिछले जन्म में राक्षस था या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता लेकिन तुम लोग इस जन्म में उस टटका के लिए जरूर राक्षस साबित हुए...।'' मेरो बात सुनकर वे लोग खिसियानी-सी हंसी हंसकर रह गये।

---

39. मॉर्डन संन्यासी

''अर सुनती हो...तुम्हारा भाई संन्यासी हो गया है....।'' रमेश घर में पांव रखते ही मुस्कराते हुए बोला। उसकी पत्नो घर का काम छोड़कर आंचल से हाथ पोंछती हुई आ गई। उसकी पत्नो की आंखों से अपनी मायके का हाल जान लेने की आतुरता टपक रही थी। वह कुछ मायूस होती हुई बोली—''क्यों मजाक करते हैं, साफ-साफ बताइये न, क्या बात है?'' वह एकदम विनीत होकर खुशामद-सी करने लगी। रमेश हंसने लगा ''मैं सच कहता हूं, तुम्हारा भाई संन्यासी हो गया है और तुम्हारो भाभी भी तैयारो कर रही है।''

''आप शरारत करते हैं, ऐसा कैसे हो सकता है?'' वह रुआंसी होकर बोली। उसके स्वर में अविश्वास था। वह क्षण भर में अपने मायके पहुंच गयी। वृद्ध मां-बाप के दुबले शरोर उसकी आंखों के सामने झूल गये। अब इस बुढ़ापा में उसके माता-पिता की देखभाल कौन करगा। अपने लड़की होने का जितना दुख उसे आज हो रहा था उतना कभी नहीं हुआ था। विचारों में डूबी वह एकदम करुणा की मूर्ति बन गयी। उसकी आंखों से टप-टप आंसू झरने लगे। रमेश उसे रोते देख सकपका गया, बोला ''अर, तो इसमें रोने की क्या बात है, तुम्हारा भाई संन्यासी जरूर हो गया है लेकिन कहीं गया थोड़े है। क्या तुम 'भगवान' रजनीश के संन्यासियों को नहीं जानती? वह रजनीश का चेला हो गया है।''

उसकी पत्नो रोते-रोते हंसने लगी ''आप बहुत 'ओ' हैं। पहले नहीं कहा, अब बताते हैं, कि रजनीश का चेला हो गया है। आपको तो मुझे रुलाने में ही आनन्द आता है। आप खुद निकम्मे हैं, मेर भैया संन्यासी हो गये तो आपको ईर्ष्या होने लगी....।'' और उन दोनों की मिली-जुली हंसी कमर में गूंज गई।

---

40. पता नहीं पंछी किधर गयो र

दफ्तर से लौटा तो देखा शीला आज भी अतीत में खोई हुई है। उसकी निगाहें झरोखे के पार अमराई में कुछ तलाश रही थी। शीला के अतीत से जुड़ने से मैं वर्तमान में टटने लगता हूं। मेरा मन शीला के प्रति करुणा से भर जाता है। काश! सचमुच कोई अदृश्य शक्ति होती जिससे मैं दोनों हाथ जोड़, झोली फैला भीख मांग सकता कि मेरा सब कुछ ले लो पर मेरो शीला की खुशियां लौटा दो। मैं चुपचाप उसके पीठ पीछे खड़ा हो गया पर पैरों की आहट उसकी तल्लीनता भंग नहीं कर सको। वह उसी तरह आम के वृक्ष में कुछ देख रही है लेकिन मुझे वहां कुछ भी दिखाई नहीं देता। पतझड़ का मौसम अभी-अभी खत्म हुआ है। आम की डालियों में कोमल-कोमल सुनहली पत्तियां... उमग रही हैं, परन्तु उस पेड़ पर अभी चिड़ियों का घोंसला नहीं बना है, न ही कोई (चिड़ा और चिड़ी) किसी पक्षी का जोड़ा उसके किसी डाल पर बैठे हैं, जिसकी शीला को तलाश है।

काश, बीता हुआ वक्त लौटाया जा सकता। आज से दो वर्ष पूर्व जब हम इस नये मकान में आये थे, इसी तरह पतझड़ का मौसम खत्म हो गया था। प्रकृति अपने पुराने परिधान बदल कर नये हर परिधान में संवर रही थी। शीला खिड़की खोलते ही आत्मविभोर हो खुशी से चिल्ला पड़ी, ''यहां का दृश्य तो बहुत ही सुन्दर है, वह देखो, उस पेड़ पर दो टहनी के बीच एक सुन्दर घोंसला बना हुआ है। उसी के पास एक टहनी पर दो चिड़िया बैठी चीं-चीं कर रही हैं। उस घोंसला में उनके बच्चे भी होंगे, है न?'' वह मेरो ओर देखकर पूछ बैठी थी। उसकी बचकाना प्रश्न सुन मैं अपनी हंसी रोक नहीं सका था, हंसकर कहा, ''हो सकता है....।'' और मैंने देखा था शीला के चेहर पर लज्जा की लालिमा दौड़ गयी थी।

फिर तो समय पंख लगाकर उड़ने लगा। सुख के दिन कैसे व्यतीत होते हैं कि कुछ पता ही नहीं चलता। चिड़ियों की चहचहाट के

साथ सबेरा होता और जीवन की मधुरता में डूबा दिन सूरज की अंतिम किरणों के साथ आम की फुनगियों से होकर विदा हो जाता। धीर-धीर सारो प्रकृति फूल और फलों से लद गयी। हमार चारों ओर खुशियां-ही-खुशियां बिखरो थीं, जैसे हम स्वप्न में जी रहे हों। शीला इस स्थिति से बेहद प्रसन्न थी मानो वह स्वर्ग में पहुंच गई हो। फिर उसने एक स्वस्थ सुन्दर शिशु को जनम दिया और हम दोनों निहाल हो गये। लगता था इस संसार में हमार जैसा भाग्यशाली और सुखी व्यक्ति दूसरा कोई न होगा।

समय उसी गति से भागता रहा और हमारा पप्पू तेजी से चांद की तरह बढ़ने लगा। फिर एक दिन हम लोगों ने देखा कि आम के उस घोंसला में एक नन्हीं चिड़िया सिर उठाने लगी है। शीला यह देख फूली नहीं समाती थी। अब वह रोज नन्हीं चिड़िया को नजरों से तलाशती, पप्पू को गोद में लेकर उसे दिखाने के बहाने खुद देखा करती और धीर-धीर वह स्वयं उस नन्हीं चिड़िया से भावुक होकर जुड़ती चली गयी थी। अब जिस दिन वह उस नन्हीं चिड़िया को देख नहीं पाती; कुछ बेचैन सी रहन लगती, परन्तु समय सदा एक-सा कहां रहता है? बसंत का मौसम खत्म हो गया और तेज गरमी पड़ने लगी। देखते ही देखते हरियाली गायब हो गयी। पत्ते सूखने लगे और पेड़ निर्जीव से दिखाई देने लगे। सूर्य अपना सारा क्रोध पृथ्वी पर उतारने लगा। चारों ओर जैसे अंगार बरसते थे। दोपहर में तेज अंधड़ हवायें चलतीं और शरोर को झुलसाने लगतीं। तमाम सावधानियों के बावजूद पप्पू को लू लग गया। तुरन्त उपचार किया गया, परन्तु बुखार नहीं उतरा। आज दूसरा दिन था, पप्पू अचेतावस्था में पड़ा था, उसका सारा शरोर तप रहा था। शीला ने खिड़की खोल दी। सूरज की पीली बीमार रोशनी पश्चिम की ओर लौट रही थी और घोंसला के पास टहनी पर वही दोनों चिड़िया एकदम उदास बैठी थीं। शीला का जी धक से होकर रह गया। वह एक अदृश्य आशंका से अभिभूत हो सिहर उठी। उस पर मूर्छा छान लगी और वह खिड़की की सलाखों को पकड़कर 'खड़ी' लगभग चीख उठी, ''नहीं...'' मैं दौड़कर उसके पास पहुंचा, पूछा ''क्या बात है...?'' वह अपने को सम्हालते हुए बोली, ''उधर देखो, आम के उस डाल पर बैठी दोनों चिड़ियां एकदम चुप क्यों हैं?'' मैं भला क्या जवाब देता। पूछा ''लेकिन तुम इतने परशान क्यों हो?'' वह कुछ देर चुप रही फिर बोली, ''मुझे लगता है, उसका बच्चा कहीं चला गया है, या बीमार है...।'' मैं सुनकर सन्न रह गया हूं। मैं अपने अन्दर एक टोस-सा महसूस करता हूं। मैं उसे आश्वस्त करना चाहता हूं। ''ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है।'' मैंने शीला को खिड़की पर से हटाकर खिड़की बन्द कर दिया।

शाम का धुंधलका घिर आया था। बिजली के बल्ब कम पावर के कारण फीकी उदास रोशनी फैला रहे थे जिससे कमर की उदासी और बढ़ गयी थी। धीर-धीर रात गहराती जा रही थी, परन्तु पप्पू का बुखार ज्यों का त्यों बना हुआ था। शीला बहुत परशान और कातर हो रही थी। नींद के बोझ से हम दानों की आंखें झपकने लगी थीं। रात का तीसरा पहर ढल रहा था कि आम के पेड़ पर चिड़ियां शोर मचाने लगीं। शीला एकदम चौकन्नी हो गयी, ''आज यह क्या हो गया, चिडियां इस तरह शोर क्यों मचा रहीं?'' उसने मेरो ओर देखकर कहा ''समझ में नहीं आ रहा, ऐसा तो कभी नहीं होता था'' एक अज्ञात भय और आशंका से मैं सिहर उठा था। पप्पू का शरोर अब भी तवा की तरह तप रहा था और उसकी सांस धौंकनी की तरह चल रही थी। दोनों चिड़ियां सबेर तक चीखती रहीं और हम दोनों खाट के दोनों तरफ बैठे जागते रहे। सबेर खिड़की खोला तो देखा चिड़ियां इस डाल से उस डाल पर उडती थीं और लगातार चीख रही थीं। जब घोंसला पर निगाह गयी तो देखा एक काला सांप फन फैलाये बैठा है। फिर वह सांप पेड़ पर से उतर कर धीर-धीर गायब हो गया।

शीला यह दृश्य देख सहमकर जड़ हो गयी थी और जैसे उसे फालिज मार गया हो। वह यंत्र वत खिड़की से हटकर पप्पू के खाट पर आ गयी। उसका शरोर अभी भी तवा की तरह तप रहा था। उसने दुलार से उसके मस्तक पर हाथ फेरा जैसे कोई तपस्वी अपने तप के बल पर किसी दुखिया का क्लेश हर रहा हो। इस वक्त शीला करुणा की मूर्ति थी। उसका सारा स्नेह आंखों में उतर आया था, लेकिन हाय, काल कितना क्रूर है! वह किसी की अवशता, किसी की ममता पर कहां पसीजा है! पप्पू ने शीला के स्नेहिल स्पर्श पर आंखें खोल दीं। उसके अधर पर मुस्कान की हलकी रखा खिच गयी। मानो कहता हो, ''मैं जा रहा हूं, हंसकर विदा करो''.....और फिर एक लंबी हिचकी के साथ एक और पंछी अपना घोंसला छोड़कर उड़ गया। हमारो ही आंखों के सामने हमारा प्यारा पप्पू हमें छोड़कर चला गया। फिर शीला की दर्द भरो चीख और करुण रुदन कमर में पसीजती रही।

शीला का हृदय विदारक क्रंदन हृदय को चीर डालती थी। मैं अधीर हो फिर खिड़की खोल दिया। वहां अमराई के उसी डाल पर अब भी वे पक्षी खामोशी से बैठे मानो आंसू बहा रहे थे। फिर देखते ही देखते वे दोनों पक्षी उस घोंसला का चक्कर लगाते हुए कहीं उड़ गये। शीला की करुणा भरो प्रश्नवाचक दृष्टि मुझे घूरने लगती है। मैं जानता हूं शीला पूछना चाहती है कि वे पंछी कहां गये? शायद उसे उम्मीद है कि वे लौटकर अपने घोंसला में फिर आयेंगे। पर मैं असमंजस की स्थिति को झेल रहा हूं। मन में अनिश्चय का धुंध छाया हुआ है। क्या कहूं? हां या नहीं! पर पलक अपने आप झुकती चली जाती है मानो कह रही हा....''पता नहीं।''

---

41. अन्त समय कोई नाहीं

माखन का शरोर कट हुए वृक्ष की तरह निर्जीव-सा खाट पर पड़ा है। जीवन का मोह और मृत्यु का भय उसके मन में फांस की तरह कसक रहा है। उसका सम्पूर्ण शरोर दर्द से व्याप्त है, जैसे एक साथ हजारों सुइयां उसके रोम-रोम में चुभो दी गयी हों। शरोर की रुग्णावस्था देखकर लगता है कि विवश होकर अब उसे इस देह को त्यागना पड़ेगा। हठपूर्वक कब तक इसे रखा जा सकता है! न चाहने पर भी अंततः इसे छोड़ना तो पड़ेगा ही। उसकी दृष्टि बार-बार दरवाजा की ओर उठ जाती है। बहुत देर की प्रतीक्षा के बाद वह हताश-सा बुदबुदा उठा.....''अब तक वह नहीं आया....मैं कितना अभागा हूं।''

उस विशाल गृह में व्याप्त लालटन की धूमिल रोशनी पीली और बीमार-सी लग रही थी। उसे लग रहा था मानो कमर की दीवारं धीर-धीर सिमटो चली आ रही हैं। माखन सूखी लकड़ी की तरह पड़े अंगों को देख सोचता है। यही वह शरोर है, ये ही वे अवयव हैं, जिन्हें कभी वह सजाता, संवारता और देख-देखकर उसकी सुन्दरता पर खुद ही मुग्ध हो जाता था। जिधर भी निकलता सीना तानकर चलता और नोकदार मूंछों पर हाथ फेरता था। शरोर का गठन और विस्तार देखकर ही लोग भय खाते थे। उसे अपनी अतुल शारोरिक शक्ति और सूझबूझ पर गजब का भरोसा था। और इन सबका उपयोग उसने सदा दूसरों को कष्ट पहुंचाने के लिए ही किया। उसे अपने शरोर पर कितना अभिमान था। पर आज सब कुछ धोखा दे गया है। शरोर पंगु हो गया है। उसकी सुन्दरता विनष्ट हो गई है। वह वीभत्स और घिनौना लग रहा है। बुद्धि कुण्ठित हो गई है और शरोराभिमान सीसा की तरह टट कर चूर-चूर हो गया है।

वह अपने विशाल गृह और अनैतिकतापूर्वक संग्रहीत भूमिगत विपुल सम्पत्ति की तुलना उस साधु की जीर्ण-शीर्ण पर्णकुटोर और जीवन-निर्वाह हेतु रखे कुछेक पात्रों से करने लगा। क्या हुआ जो मैंने पाप और कपटपूर्वक इतना ऐश्वर्य संचित किया। आज तो सब कुछ छूटा जाता है। यह सुन्दर भवन किस काम का, जब मैं ही नहीं। युवापन में बेहद खूबसूरत और रगीन दिखनेवाला यह संसार उसे दुखमय, भग्न और बदरग दिखाई देता है। मुझसे तो वह साधु ही अच्छा, जिसने मेरो तरह बाह्य भोगों के पीछे भागकर कुछ भी संग्रह नहीं किया। जिसने दूसरों की सुख-सुविधा के लिए अपने जीवन की आहुति दे दी। दीन-दुखियों की सेवा करते-करते अपने शरोर को सुखा डाला। लगता है इस हड्डी की ठठरो में कहीं मुट्ठी भर भी मांस नहीं होगा। भीषण ताप, शीत और बरसात में एकरस भागता यह आदमी कभी नहीं थका। अनेक पीड़ा और यातनाएं सहकर भी अपना धर्म नहीं छोड़ा।

माखन अनवरत उस साधु के विषय में सोचता जा रहा है, जो उसकी बीमारो का समाचार सुनते ही भागा चला आया था। माखन को इसकी कतई उम्मीद न थी। कारण स्पष्ट था, उसने हमेशा उस साधु को दुत्कारा और जलील किया था। परन्तु जब उसे अपने घर में आये देखा तो वह शर्म स पानी-पानी हो गया। जिसने जीवन में कभी पराजय स्वीकार नहीं किया, उसे लग रहा था कि वह इस निहत्थे साधु से पराजित हो गया है। उसकी मुखमुद्रा अत्यन्त दीन और मलिन हो गई। मानो किसी ने उसके चेहर पर कालिख पोत दिया हो। उसकी कठोर, निष्ठुर आंखें सौम्य और कारुणिक हो गयीं। उसका मुखमंडल जो उस साधु के परिहास में सदा तत्पर रहता, आज सूखी पत्ती की तरह कांतिहीन हो गया था। वह पछता रहा था अथवा अपनी विवशता पर दुखो था, यह कह पाना कठिन है।

आदमी कितना दंभी होता है। यही माखन जब तक पौरुष रहा, अपन सामने किसी को कुछ समझता ही न था। लोगों को लूटना-पीटना और खून-खराबा करना ही इसका व्यवसाय था। जब तक सामर्थ्य रहा, पाखण्डी ठूंठ की तरह कभी नहीं झुका। पर आज जब वह मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ है, सारा अभिमान मोम की तरह पिघल गया है। जाने क्यों लोगों को सद्‌बुद्धि तभी आती है, जब पैर कब्र में झूलने लगते हैं।

जिस गांव में यह शैतान रहता था, उसी गांव में एक साधु की पर्णकुटोर भी था। कुछ साल पहले वह रमता हुआ आया था। लोगों ने भक्ति भाव से कुटो बना दी तो वह यहीं रम गया। माखन नहीं चाहता था कि साधु यहां रहे और गांव वाले नहीं चाहते कि माखन यहां रहे। पर न माखन गया, न साधु टला। दोनों अपनी जगह पर बने रहे। एक घाव करता, दूसरा मलहम लगाता। यह क्रम वर्षों जारो रहा। साधु मौन और सदाचरण से शिक्षा देते और भिक्षा से गुजर करते थे।

वह दवाई बनाकर ले आया तो माखन ने आंख मूंदकर दवाई पी ली। उसमें इतनी दृढ़ता न थी कि वह साधु से आंख मिला सके। वह जाते हुए कहता गया, ''मं प्रातः पुनः आऊंगा, तुम निश्चित होकर विश्राम करो। बेचारा बंशी पुत्र-शोक में अत्यन्त संतप्त है, उसे जरा धीरज दे दूं।....पता नहीं, ये लोग इस क्षणभंगुर टटते-जुड़ते रिश्ते के लिए इतना दुखो क्यों होते हैं। जो मिला है कालान्तर में उनका वियोग निश्चित है यह जानकर भी लोग सत्य से आंखें मीच लेते हैं।'' साधु चला गया।

कुछ क्षण तक वह उसे जाते हुए देखता रहा। बाहर अन्धकार बढ़ने लगा था। उसने अपनी दृष्टि फेरो और छत पर गड़ा दी। भीतर अतीत आन्दोलित हो रहा था। वह सोचने लगा, विचित्र संयोग है। इस जीवन-मरण के क्षण में न जाने क्यों मुझे अनेक बार इस साधु का आश्रय लेना पड़ा है। आज भी जब मेरो जीवन-ज्योति प्रतिक्षण मलिन होती जा रही है यह साधु ही मेर साथ है जिसे मैं अपना बैरो समझता था और जिन्हें अपना समझा था वे तो मझधार में ही छोड़कर चले गये। सचमुच इस विचित्र संसार में अपना-पराया पहचान पाना बड़ा कठिन है। उसे अपने बीवी-बच्चों का कितना गुमान था! उन्हं देख वह फूला नहीं समाता था, परन्तु अफसोस, उसके देखते-ही-देखते निर्दय काल ने उन्हें अपना ग्रास बना लिया और माखन हाथ मलता रह गया। उसकी सम्पूर्ण योजना, विपुल खजाना सब कुछ धरा का धरा रह गया।

उसे साधु के प्रति किया कुकृत्य स्मरण हो आया। उस दिन उसने ठान लिया था कि साधु को दोषी ठहरा, गांव वालों के हाथों

पिटवाकर ही दम लेगा। चोरो का सामान उसकी कुटिया में छिपा वह झटपट गांव वालों को बुला लाया। पर वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं रहा। गांव वालों को विश्वास नहीं हुआ और वे मुंह बांधकर लौट गये। तब माखन खीझकर रह गया था।

इस पर भी साधु ने अपना धर्म नहीं छोड़ा, तो माखन से न रहा गया। उसने जाकर साधु को ललकारा; ''ऐ साधु! जान-बूझकर क्यों अपना जीवन बरबाद कर रहे हो? इन अपढ़ मूर्खों की सेवा करके तुम्हें क्या मिलेगा? मुझे इस गांव का पिछला हिसाब चुकता करना है। गांव छोड़ दो अन्यथा तुम्हें यह संसार भी छोड़ना पड़ेगा।''

''माखन, तुम्हारो तरह मैं भी अपने स्वार्थ के लिए यह सब करता हूं। संसार के प्रत्येक प्राणी की तरह, तुम्हारो तरह मैं भी सुख ढूंढ़ रहा हूं। बस दोनों के तौर-तरोके और रास्ते अलग-अलग हैं। या यों कहा जाये कि तुम गलत रास्ते पर जा रहे हो। जिस मार्ग का अवलम्बन तुमने किया है, वहां पश्चाताप, क्रोध, आक्रोश, घृणा, उत्पीड़न और दुख के सिवा कुछ नहीं है। ये भौतिक उपादान जिनका संग्रह तुम भाग-भागकर, लोगों का खून-खराबा करके कर रहे हो, एक भी तुम्हार काम नहीं आयेगा। जिस बाहुबल और धन का तुम्हें इतना मद है, जिन रिश्तों का तुम्हें इतना घमंड है वे सब एक-न-एक दिन छूट जायेंगे।'' उत्तर सुन माखन चकित रह गया था। उस दिन वह निरुत्तर हो लौट आया था।

आज भी वे बातें उसे साल रही हैं कि वह मूर्खतावश जीवनभर अपने लिए कूड़ा-करकट ही इकट्ठा करता रहा। वह सतृष्ण आंखों से चारों ओर देखता है। लालटन की ज्योति धीमी होती जा रही थी। और बाहर प्रकाश फैल रहा था। सामने पत्नो की हंसती हुई तस्वीर देख ठिठक जाता है। उसे लगता है पत्नो भी उसके अज्ञान पर हंस रही है। उसे अपना यह परिहास असहनीय लगता है। जैसे किसी ने उसके मर्माहत भाग को छू लिया हो। उसके भीतर-ही-भीतर सीमा तक कुछ टूट जाता है और वह घायल पंछी की तरह तड़प उठता है। उसका दुख और घनीभूत हो जाता है। तभी उसके अन्तर में भयानक पीड़ा जागती है और वह साधु को अन्तिम बार देखने को व्याकुल हो जाता है। वह करवट बदलकर दरवाजा की ओर मुख कर लेता है।

इस वक्त प्रतीक्षा का एक-एक पल उसे युगों की भांति दीर्घ और भारो लग रहा था। वह अपने को अत्यन्त निऽसहाय-सा महसूस कर रहा था। शरोर की शिथिलता और मन की व्यग्रता दोनों एक ही अनुपात में बढ़ती जा रही थीं। जब सब कुछ शून्य में डूबता जा रहा था तब वह साधु आते हुए दिखाई दिया। माखन को मानो तिनके का सहारा मिल गया। उसने शक्ति लगाकर कुछ बोलने का प्रयत्न किया परन्तु उसके मुख से हलकी-सी चीख निकली और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।